

भा० दि० जैनसंघ-ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमालिका उद्देश्य
प्राकृत संस्कृत आदि भाषाओंमें लिखद दि जैनग्रन्थ,
दर्शन, साहित्य, पुराण आदिको पद्यासम्पन्न
हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशित करना

संस्थापक
भा० दि० जैनसंघ

ग्रन्थांक १-७

प्रातिष्ठान
मेनेजर
भा दि० जैनसंघ
बोयली, मधुरा

मुद्रक—पं० शिवशारदायण प्रयागमाध जी० ८०
नव्य संस्कार प्रेस मयैनी बाणगढ़ी ।

Sri Dig Jain Sangha Granthamala No 1-VII

**KASAYA-PAHUDAM
VII
PRADESHAVIBHAKTI**

BY
GUNADHARACHARYA

WITH
CHURNI SUTRA OF YATIVRASHABHACHARYA

AND
THE JAYADHAVALA COMMENTARY OF
VIRASENACHARYA THERE-UPON

EDITED BY
Pandit Phulachandra Siddhantashastri
EDITOR MAHABANDHA
JOINT EDITOR DHAVALA.

Pandit Kailashachandra Siddhantashastri

Nyayatirtha Siddhantaratna,
Pradhanadhyapak Syadvada Digambara Jain
Vidyalyaya Varanasi

PUBLISHED BY
THE SECRETARY PUBLICATION DEPARTMENT
THE ALL-INDIA DIGAMBAR JAIN SANGHA
CHAURASI, MATHURA

विषय-परिचय

पूर्वमें प्रकृतिविमर्शित स्थितिविमर्शित और अनुसंगविमर्शित विचार कर आये हैं। प्रकृतमें प्रदेशविमर्शित विचार करना है। कर्मों का बन्ध होने पर उत्पन्न बन्धको प्राप्त ज्ञानवाले ज्ञान्यपर्यायि व्याठ या सात कर्मों को या द्रव्य मिलता है उसकी प्रदेशा र्था है। यह दो प्रकारका है—एक मात्र बन्धके समय प्राप्त होनेवाला द्रव्य और दूसरा बन्ध होकर सत्तामें स्थित द्रव्य। कवच बन्धके समय प्राप्त होनेवाले द्रव्यका विचार महाबन्धमें किया है। यहाँ वर्तमान बन्धके स्वयं सत्तामें स्थित त्रितर्का द्रव्य होता है उस सबका विचार किया गया है। उसमें भी ज्ञान्यपर्यायि सब कर्मों की अपेक्ष विचार न कर यहाँ पर मात्र मोक्षनीयकर्मों की अपेक्ष विचार किया गया है। मोक्षनीयकर्मों के कुल भेद अष्टाहस हैं। सर्व प्रथम इन भेदोंका आश्रय स्त्रिय द्विज और बादमें इन भेदोंका आश्रय लेकर प्रस्तुत अधिकार में विविध अनुयोगाद्योंके आश्रयसे प्रदेशविमर्शित साङ्गोपाङ्ग विचार किया गया है। यहाँ पर त्रिभ अनुयोगाद्योंके आश्रयसे विचार किया गया है वे अनुयोगादर्य हैं—भागाभ्याग सर्वप्रदेशविमर्शित, मोक्षप्रदेशविमर्शित, कृष्ट प्रदेशविमर्शित, अनुकृष्ट प्रदेशविमर्शित अपन्य प्रदेशविमर्शित, अजपन्य प्रदेशविमर्शित, स्वप्रदेशविमर्शित, अबाधप्रदेशविमर्शित प्रुक्षप्रदेशविमर्शित, अप्रुक्षप्रदेशविमर्शित, एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्व काल आन्तर मध्य जीवोंकी अपेक्षा बहुविचय परिमाण, कृत्र, स्वर्गान काल आन्तर, मध्य और अस्वयंकृत। मात्र उत्तरप्रदेशविमर्शित विचार करते समय सभिर्कर्म न्यामक एक अनुयोगादर्य और अधिक हो जाता है। कारण स्पष्ट है।

भागाभागा—इस अनुयोगादर्यमें कृष्ट, अनुकृष्ट, अपन्य और अजपन्य इन चार वर्गोंका आश्रयकर एक बार जीवोंकी अपेक्षा और दूसरी बार सत्ताकी स्थित कर्म परमाणुओंकी अपेक्षा कोन किन्तु भागप्रमाण हैं इसका विचार किया गया है इसलिये इस दृष्टिसे भागाभ्याग दो प्रकारका है—जीवभागाभागा और प्रदेशभागाभागा। जीवभागाभागाका विचार करते हुए बतलाया है कि कृष्ट प्रदेशविमर्शितमें जीव-सब जीवोंके अनन्तर्वे भ्यागप्रमाण हैं और अनुकृष्ट प्रदेशविमर्शितमें जीव सब जीवोंके अनन्त अनुयोगप्रमाण हैं। इसीप्रकार अपन्य प्रदेशविमर्शितमें और अजपन्य प्रदेशविमर्शितमें जीवोंके विषयमें जानना चाहिये। यह कोष प्रत्यक्ष है। आदेशसे सब मागेजाधर्म अपनो-अपनी मंशाको जानकर यह भागाभागा समझ लय चाहिये। प्रदेश भागाभ्यागका विचार करत हुए सर्व प्रथम तो स्वभावसे मोक्षनीय कर्मोंकी अपेक्षा प्रदेशभागाभ्यागका विषय किया है क्योंकि अचान्त भेदोंकी विषया किंच द्विज मोक्षनीय कर्म एक है, इसलिये इसमें भागाभागा पहिल नहीं आता। इसके बाद ज्ञान्यपर्यायि व्याठ कर्मोंकी अपेक्षा स्वभावसे मोक्षनीय कर्मोंका किन्तु द्रव्य मिलता है इसका विचार करते हुए बतलाया गया है कि आठों कर्मों का या समुच्चय द्रव्य है उसमें आश्रितिके अर्थात् यत्तवे भ्याग भाग देनपर आश्रय आता। जब सब द्रव्यमेंसे अलग करके बचे हुए क्षेत्र बहुभागप्रमाण द्रव्यके आठ पुञ्ज करके आठों कर्मों में अलग-अलग विभक्त करदे। इसके बाद या एक भाग बचा है उसमें पुनः आश्रितिक अर्थान्वयने भागका भाग देनपर जो एक भाग लय आता उसे अलग करके दोन भागप्रमाण द्रव्य बर्त्तीयको दे दे। पुनः बच हुए एक भागमें आश्रितिक अर्थान्वयने भ्याग भाग देन पर या भागप्रमाण द्रव्य होकर दे दे। लय द्रव्यमें पुनः आश्रितिके

असंख्यातवें भागका भाग देने पर जो बहुभाग शेष रहे वह समान रूपसे ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय इन तीन कर्मों में बाँट दे। लब्ध द्रव्यमें पुनः आवलिके असंख्यातवें भागका भाग देने पर बहुभागप्रमाण बचे हुए द्रव्यको नाम और गोत्र इन दो कर्मों में बाँट दे। तथा अन्तमें लब्ध रूपमें जो एक भाग बचता है वह आयु कर्मको दे दे। इस प्रकार विभाग करनेपर मोहनीय कर्मको प्राप्त हुआ द्रव्य आ जाता है। मोहनीयकर्मको प्राप्त हुआ यह द्रव्य उत्कृष्ट और जघन्यके भेदसे दो प्रकारका होकर भी सब कर्मों की अपेक्षा पूर्वमें जो विभागका क्रम बतलाया है उसमें कोई बाधा नहीं आती। इस प्रकार ज्ञानावरणादि आठ कर्मों को जो द्रव्य मिलता है उसका अलग अलग विचार करनेपर आयु कर्मको सबसे स्तोक द्रव्य मिलता है। नाम और गोत्र कर्मका द्रव्य परस्परमें समान होकर भी आयुकर्मके द्रव्यसे विशेष अधिक होता है। ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायकर्मको मिलनेवाला द्रव्य परस्परमें समान होकर भी नाम और गोत्रकर्मको मिले हुए द्रव्यसे विशेष अधिक होता है। इससे मोहनीय कर्मका द्रव्य विशेष अधिक होता है और मोहनीयके द्रव्यसे वेदनीयकर्मका द्रव्य विशेष अधिक होता है। यह ओघप्ररूपणा है। सब मार्गणाओंमें इसे इसीप्रकार यथायोग्य घटित कर लेना चाहिए।

उत्तरप्रकृतियोंमें मोहनीय कर्मके सब द्रव्यका विभाग करते हुए पहले उसमें अनन्तका भाग दिलाकर एक भाग सर्वधाति द्रव्य और शेष बहुभाग देशधाति द्रव्य बतलाया गया है। देशधाति द्रव्यमें भी कषाय और नोकषाय रूपसे उसे बाँटा गया है। बादमें प्रत्येकका अपने अपने अवान्तर भेदोंमें बटवारा किया गया है। इसी प्रकार सर्वधाति द्रव्यको भी सर्वधाति प्रकृतियोंमें विभक्त करके बतलाया गया है। इस विषयकी विशेष जानकारीके लिए मूलमें देख लेना चाहिए। गति आदि मार्गणाओंमें विचार करते समय नरकगतिमें जो विशेषता है उसका अलगसे निर्देश करके अन्यत्र भी जान लेने की सूचना की गई है। इस प्रसङ्गसे गतिसम्बन्धी जिन मार्गणाओंमें नरकगतिसे कुछ विशेषता है उसका निर्देश करके उत्कृष्ट भागाभाग प्ररूपणाको समाप्त किया गया है। जघन्य भागाभागका भी इसी प्रकार स्वतन्त्रतासे विचार करते हुए ओघ और आदेशसे उसका अलग अलग स्पष्टीकरण किया गया है। आदेशप्ररूपणा की अपेक्षा मात्र नरकगतिमें विशेष विचार करके गतिमार्गणाके जिन अवान्तर भेदोंमें नरकगतिके समान जघन्य भागाभाग सम्भव है उनका नाम निर्देश करके इस प्रकारको समाप्त किया गया है।

सर्व-नोसर्वप्रदेशविभक्ति—सर्वप्रदेशविभक्तिमें सब प्रदेश और नोसर्वप्रदेशविभक्तिमें उनसे न्यून प्रदेश विवक्षित हैं। मूल और उत्तर प्रकृतियोंमें ये यथायोग्य ओघ और आदेशसे घटित कर लेने चाहिए।

उत्कृष्ट-अनुत्कृष्टप्रदेशविभक्ति—सबसे उत्कृष्ट प्रदेश उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति है और उनसे न्यून प्रदेश अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति है। मूल और उत्तर प्रकृतियोंके ओघ और आदेशसे जहाँ पर ये जितने सम्भव हों उन्हें उस प्रकारसे जान लेना चाहिए।

जघन्य-अजघन्यप्रदेशविभक्ति—सबसे कम प्रदेश जघन्य प्रदेशविभक्ति है और उनसे अधिक प्रदेश अजघन्य प्रदेशविभक्ति है। मूल और उत्तर प्रकृतियोंके ओघ और आदेशसे जहाँ पर ये जिसप्रकार प्रदेश सम्भव हों उन्हें उस प्रकारसे जान लेना चाहिए।

सादि-अनादि-ध्रुव-अध्रुवप्रदेशविभक्ति—सामान्यसे मोहनीयके क्षय होनेके अन्तिम समयमें जघन्य प्रदेशविभक्ति होती है और इससे पूर्व सब अजघन्य प्रदेशविभक्ति है, अतः अजघन्य प्रदेशविभक्ति सादि विकल्पके बिना अनादि, ध्रुव और अध्रुव यह तीन प्रकारकी

होती है। अब यहाँ ब्रह्म, अमुक्त और अजगम्य प्रदेशविमर्शियों को ये सादि और अभुव इस तरह दो प्रकार की ही होती हैं। अजगम्य प्रदेशविमर्श स्वप्नाके अन्तिम समयमें होती है इसलिये यह सादि और अभुव है। तथा ब्रह्म और अमुक्त प्रदेशविमर्श अराचिर्ल है, इसलिये ये भी सादि और अभुव हैं। यह ओप प्रकल्प है। आदेशसे सब गतियाँ परिवर्तनशील हैं, अतः जन्ममें तब सब प्रदेशविमर्शियों सादि और अभुव ही होती हैं। आगे अजगम्य मार्गवाच्यमें भी इसी प्रकार विचार कर बैठित कर लेना चाहिए। उत्तर प्रकृतिबोधोंकी अपेक्षा मिथ्यात्व मध्यकी आठ कपाय और पुरुषवेदके किना आठ नोकपाय इनकी अजगम्य प्रदेशविमर्श स्वप्नाके अन्तिम समयमें प्राप्त होती है, अतः इनकी भी ब्रह्म, अमुक्त और अजगम्य प्रदेशविमर्शियों सादि और अभुव तथा अजगम्य प्रदेशविमर्शियों अन्यदि, भुव और अभुव होती हैं। पुरुषवेदके छपसे छपकमेखि पर बड़ा हुआ जो गुणितकर्मांशाला बीच अब बीचकी अन्तिम पक्षिको पुरुषवेदमें संक्रमित करता है तब पुरुषवेदकी एक समयके लिए ब्रह्म प्रदेशविमर्श होती है। यही बीच अब पुरुषवेद और वह नोकपायोंके ब्रह्मको संवत्सन कोषमें संक्रमित करता है तब संवत्सन कोषकी एक समयके लिए ब्रह्म प्रदेशविमर्श होती है। यही बीच अब संवत्सन कोषके ब्रह्मको संवत्सनमानमें संक्रमित करता है तब संवत्सनमानकी ब्रह्म प्रदेशविमर्श होती है। यही बीच अब संवत्सनमानके ब्रह्मको संवत्सन नाशमें संक्रमित करता है तब संवत्सन मायाकी ब्रह्म प्रदेशविमर्श होती है। तथा यही बीच अब संवत्सन मायाके ब्रह्मको संवत्सन लोभमें संक्रमित करता है तब संवत्सन क्षामकी ब्रह्म प्रदेशविमर्श होती है। तथा इनकी अजगम्य प्रदेशविमर्श अपनी अपनी क्षपणाके अन्तिम समयमें होती है। इस प्रकार इन पाँचोंकी ब्रह्म और अजगम्य प्रदेशविमर्श एक समयके लिए होती है इसलिये ये सादि और अभुव हैं। तथा इनकी अजगम्य प्रदेशविमर्श अमादि भुव और अभुव हैं। मात्र पुरुषवेदका अजगम्य प्रदेशविमर्श क्षपितकर्मांश अजगम्य स्वप्नकरणके अन्तिम समयमें होती है, इसलिये इसकी अजगम्य प्रदेशविमर्श सादि भी बन जाती है। तथा इन पाँचोंकी अनुक्त प्रदेशविमर्श सादि अमादि भुव और अभुव चारों प्रकारकी है। अब एक इनकी ब्रह्मप्रदेशविमर्श यही मात्र होती तब तब ता यह अमादि, भुव और अभुव है और ब्रह्मके बाह्य यह सादि है। सम्पत्स और सम्पत्सिम्पत्स ये गतियाँ स्वदि और सान्त हैं इसलिये इनके चारों ही पर सादि और अभुव हैं। अतन्नाभुवकी अनुक्तकी ब्रह्म और अमुक्त प्रदेशविमर्शों अराचिर्ल हैं अजगम्य प्रदेशविमर्श अजगम्यके अन्तिम समयमें होती है इसलिये ये तीनों सादि हैं। तथा क्षपणाके पूर्व इनकी अजगम्य प्रदेशविमर्श निवमसे होती है इसलिये ता यह अमादि है। तथा क्षपणाके बाह्य पुनः संवत्स क्षाम पर यह सादि है। भुव और अभुव बिजस्य तो यहाँ सम्भव हैं ही। इस प्रकार इनकी अजगम्य प्रदेशविमर्श चारों प्रकारकी प्राप्त होती है। यह ओपप्रकल्प है। आदेशसे अजगम्य और मध्यमार्गवाच्य ओपप्रकल्पका बन जाती है। मात्र मध्यमार्गवाच्य भुव मात्र सम्भव यही है। शय सब मार्गवाच्य परिवर्तनशील हैं अतः जन्ममें सब गतियोंकी ब्रह्म आदि चारों विमर्शों सादि और अभुव ही प्राप्त होती हैं।

इतिमिन्-सामान्यस मोक्षनीयकी ब्रह्म प्रदेशविमर्श स्वप्नाकी ऐसा गुणितकर्मांशाला और क्षाम है जो चारद्वितीयीअध्यायोंमें और बाहर जसमें परिग्रहण करके अन्तमें श बार मात्रमें नरकके नापिकोंमें अजगम्य हाकर अन्तर्मुहूर्त कम पूरी आयु बिना बुझा है। यहाँ ब्रह्म प्रदेशविमर्शका स्वप्ना कीम समय होता है इस सम्बन्धमें हो मत है। एक मतके अनुसार अन्तर्मुहूर्त नरकायु क्षय रहनपर उसके प्रथम समयमें क्षामा है और दूसरे मतके अनुसार

नरकके अन्तिम समयमें होता है। मिथ्यात्व, बारह कपाय और ब्रह्म नोकपायोंकी उत्कृष्ट प्रदेश विभक्तिका स्वामी इसी प्रकार जानना चाहिए। जो गुणितकर्मांशिक दर्शनमोहनीयकी क्षपणा करनेवाला जीव जब मिथ्यात्वको सम्यग्मिथ्यात्वमें संक्रमित करता है तब वह सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका स्वामी होता है। तथा जब वही जीव सम्यग्मिथ्यात्वको सम्यक्त्वमें संक्रमित करता है तब वह सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका स्वामी होता है। नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका स्वामी ऐसा गुणितकर्मांशिक जीव होता है जो अन्तमें ईशान कल्पमें उत्पन्न होकर उसके अन्तिम समयमें स्थित है। स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका स्वामी इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। मात्र इसे अन्तमें असख्यात वर्षकी आयुवालोंमें उत्पन्न कराकर पत्युके असख्यातवर्ष भागप्रमाण कालके द्वारा स्त्रीवेदका पूरण कराकर प्राप्त करना चाहिए। जो गुणितकर्मांशिक जीव क्रमसे नपुंसकवेद, स्त्रीवेद और पुरुषवेदको यथायोग्य पूरकर अन्तमें मनुष्योंमें उत्पन्न होकर शीघ्र ही कर्मोंका क्षय करता हुआ जब स्त्रीवेदको पुरुषवेदमें संक्रमित करता है तब पुरुषवेदकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका स्वामी होता है। वही जीव जब पुरुषवेदको क्रोधसञ्चलनमें संक्रमित करता है तब क्रोधसञ्चलनकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका स्वामी होता है। वही जीव जब क्रोधसञ्चलनको मानसञ्चलनमें संक्रमित करता है तब मानसञ्चलनकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका स्वामी होता है। वही जीव जब मानसञ्चलनको मायासञ्चलनमें संक्रमित करता है तब मायासञ्चलनकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका स्वामी होता है और वही जीव जब मायासञ्चलनको लोभसञ्चलनमें संक्रमित करता है तब लोभसञ्चलनकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका स्वामी होता है। यह ओघसे उत्कृष्ट स्वामित्व है। ओघसे सामान्य मोहनीयकी जघन्य प्रदेश-विभक्तिका स्वामी क्षपितकर्मांशिक जीव क्षपणके अन्तिम समयमें होता है। उत्तर प्रकृतियोंकी अपेक्षा मिथ्यात्वकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका स्वामी ऐसा क्षपितकर्मांशिक जीव होता है जो अन्तमें दर्शनमोहनीयकी क्षपणा करते समय मिथ्यात्वकी दो समय कालवाली एक स्थितिको प्राप्त है। तथा वही जीव जब दर्शनमोहनीयकी क्षपणा किये बिना मिथ्यात्वमें जाकर दीर्घ उद्वेलना कालके द्वारा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करते हुए अपने अपने समयमें दो समय कालवाली एक स्थितिको प्राप्त होता है तब वह सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका स्वामी होता है। मध्यकी आठ कपायोंके विषयमें ऐसा क्षपितकर्मांशिक जीव लेना चाहिये जो अभव्योंके योग्य जघन्य प्रदेशविभक्ति करके त्रसोंमें उत्पन्न हुआ है और वहाँ आगमोक्त क्रिया व्यापार द्वारा उसे और भी कम करके अन्तमें क्षपण कर रहा है। ऐसे जीवके जब इनकी दो समय कालवाली एक स्थिति शेष रहती है तब वह इनकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका स्वामी होता है। वही जीव जब अनन्तानुबन्धीकी बार बार विसयोजना कर लेता है और अन्तमें दो छयासठ सागर कालतक सम्यक्त्वका पालन करके पुनः उसकी विसयोजना करता है तब वह अनन्तानुबन्धी चतुष्करी दो समय कालवाली एक स्थितिके रहते हुए उनकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका स्वामी होता है। नपुंसकवेद और स्त्रीवेदका भी क्षपितकर्मांशिक जीव ही अपनी अपनी क्षपणाके अन्तिम समयमें उदयस्थितिके सद्भावमें जघन्य प्रदेशविभक्तिका स्वामी होता है। पुरुषवेदकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका स्वामी ऐसा क्षपक पुरुषवेदी होता है जो जघन्य घोलमान योगसे पुरुषवेदका बन्ध करके उसका संक्रमण करते हुए अन्तिम समयमें स्थित है। इसी प्रकार सञ्चलन क्रोध, मान और मायाकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका स्वामी घटित कर लेना चाहिये। लोभ सञ्चलनकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका स्वामी क्षपक अधकरणके अन्तिम समयमें होता है। तथा ब्रह्म नोकपायोंकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका स्वामी भी ऐसा क्षपक होता है जो अन्तिम स्थिति काण्डकके संक्रमणके अन्तिम समयमें स्थित है। यह ओघसे जघन्य स्वामित्व है। आदेशसे

मूल और उत्तर प्रकृतियोंका बहुत और अल्प स्वामित्व पाये गणियोंकी अपेक्षासे तो मूलमें ही कहा है, इसलिए इसे बढ़ासे जान लेना चाहिए। तथा अल्प मार्गशब्दोंमें एक स्वामित्वको देखकर पटित कर लेना चाहिए। यहाँ पर मूलमें अल्प प्रवेशास्तर्कसे लेकर उत्तम प्रवेशास्तर्क तक किस प्रकृतिके सात्त्विक और निरस्त किन्तु स्वाद किस प्रकार प्राप्त होते हैं यह सब कवन विस्तारके साथ किया है सो उसे यहाँ मूलमें ही देखकर समझ लेना चाहिए।

[illegible]

दो छयासठ सागरप्रमाण है सो इसका खुलासा अनुत्कृष्टके समान कर लेना चाहिये। अनन्तानुबन्धी-चतुष्ककी अजघन्य प्रदेशविभक्तिके तीन विकल्प होते हैं—अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त। इनमेंसे प्रारम्भके दो विकल्पोंका खुलासा सुगम है। अब रहा सादि-सान्त विकल्प सो इसका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण है, क्योंकि विसंयोजनाके बाद इसकी संयोजना होनेपर इसका कमसे कम अन्तर्मुहूर्त कालतक और अधिकसे अधिक कुछकम अर्धपुद्गल परिवर्तन काल तक सत्ता पाया जाता है। लोभसञ्चलनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिके भी उक्त तीन विकल्प जानने चाहिये। मात्र इसके सादि-सान्त विकल्पका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त ही प्राप्त होता है, क्योंकि जघन्य प्रदेशविभक्ति होनेके बाद इसका अन्तर्मुहूर्त कालतक ही सत्त्व देखा जाता है। कालकी अपेक्षा मूल और उत्तर प्रकृतियोंकी यह शोध प्ररूपणा है। गति आदि मार्गणाओंमें अपनी अपनी विशेषताको जानकर कालका विचार इसी प्रकार कर लेना चाहिये।

अन्तर—एक बार मोहनीयकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होनेके बाद पुनः वह अनन्त काल बाद ही प्राप्त होती है, इसलिए सामान्यसे मोहनीयकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अनन्तकाल है। अथवा परिणामोंकी मुख्यतासे इसका जघन्य अन्तर-काल असंख्यत लोकप्रमाण भी बन जाता है। तथा उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है, इसलिए इसकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है। इसी प्रकार मिथ्यात्व, मध्यकी आठ कपाय और पुरुषवेदके सिवा आठ नोकपायोंके विषयमें घटित कर लेना चाहिए। अनन्तानुबन्धीचतुष्कका अन्तरकालसम्बन्धी सब कथन उक्तप्रमाण ही है। पर विसंयोजना प्रकृति होनेसे इसकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छयासठ सागरप्रमाण भी बन जाता है, इसलिए इतनी विशेषताका अलगसे निर्देश किया है। शेष सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति क्षणिके समय होती है, इसलिए उनकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं प्राप्त होता। मात्र सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व ये दोनों उद्वेलना प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण बन जानेसे वह उक्त कालप्रमाण है। तथा पुरुषवेद और चार सञ्चलन इनकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति एक समयके लिए होती है, इसलिए इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है।

सामान्यसे मोहनीयकी जघन्य प्रदेशविभक्ति दसवें गुणस्थानके अन्तिम समयमें प्राप्त होती है, इसलिए इसकी जघन्य और अजघन्य प्रदेशविभक्तिके अन्तरकालका निषेध किया है। इसी प्रकार मिथ्यात्व, ग्यारह कपाय और नौ नोकपायोंके विषयमें जान लेना चाहिए, क्योंकि इनकी क्षणिके अन्तिम समयमें ही जघन्य प्रदेशविभक्ति प्राप्त होती है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व ये उद्वेलना प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण बन जानेसे वह उक्त प्रमाण है। अनन्तानुबन्धी-चतुष्क विसंयोजना प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छयासठ सागर बन जानेसे वह उक्त प्रमाण है। लोभसञ्चलन की जघन्य प्रदेशविभक्ति एक समयमात्र होकर भी अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है, इसलिए इसकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है। तथा सम्यक्त्वादि इन सब प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्ति क्षणिके समय ही होती है, इसलिए

इसके अन्तरकालक नियम किया है। यह शोधप्ररूपका है। आदेशसे गति आदि मार्गवालोंमें यह अन्तरकाल अपनी अपनी विरोधताको समझ कर पठित कर लेना चाहिए।

नाना जीवोंकी अपेक्षा भ्रूविषय—यह प्ररूपका भी जपम्ब और उत्कृष्टके मेरुसे दो प्रकारकी है। नियम यह है कि जो उत्कृष्ट प्रदेशविमर्शिताले जीव हैं व अनुत्कृष्ट प्रदेशविमर्शिताले जीव नहीं हाथ और जो अनुत्कृष्ट प्रदेशविमर्शिताले जीव हैं व उत्कृष्ट प्रदेशविमर्शिताले नहीं होता। यह अर्थपर है। इसके अनुसार यहाँ ओपसे और चारों गतिबोकी अपेक्षा मूल और उत्तर प्रकृतिबोध्य आत्मन्वन लेकर मङ्गविषयक विचार करत हुए ये तीन मङ्ग नियम किन्तु गये हैं—१ कदाचित् सब जीव उत्कृष्ट प्रदेशविमर्शिताले नहीं हैं, २ कदाचित् नाना जीव उत्कृष्ट प्रदेशविमर्शिताले नहीं हैं और एक जीव उत्कृष्ट प्रदेशविमर्शिताला है तथा कदाचित् नाना जीव उत्कृष्ट प्रदेशविमर्शिताले नहीं हैं और नाना जीव उत्कृष्ट प्रदेशविमर्शिताले हैं। अनुत्कृष्ट प्रदेशविमर्शिताली अपेक्षा भी इसी प्रकार तीन मङ्ग कहल चाहिए। किन्तु इन भ्रूजोंको कहते समय यहाँ नियम किया है यहाँ विधि करनी चाहिए और यहाँ विधि की है यहाँ नियम करना चाहिए। ये मङ्ग ओपसे ला बन ही जाते हैं। साथ ही चारों गतिबोमें भी बन जाते हैं। मात्र सम्बन्धपूर्णमनुष्य यह स्यान्तर मार्गका है, इसलिये इनमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्टप्रदेशविमर्शिताली अपेक्षा प्रत्येकके आठ आठ मङ्ग होते हैं। जपम्ब और अजपम्ब प्रदेशविमर्शिताली अपेक्षा भी पूर्वोक्त प्रकारसे सब कवन कर लेना चाहिए। मात्र उत्कृष्ट और अनुत्कृष्टके स्वानमें जपम्ब और अजपम्ब पक्षी यात्रना करनी चाहिए।

मागामाग—इस अनुबोन्धकारमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट तथा जपम्ब और अजपम्ब प्रदेशविमर्शिताली अपेक्षा तीन विस्तक कितने मागप्रमाण हैं इसका विचार किया गया है। स्वामान्वसे सब जीव जन्मते हैं। इनमेंसे अधिकसे अधिक असंख्यात जीव एक साथ उत्कृष्ट प्रदेशविमर्शिताले बन्ध कर सकते हैं इसलिये जन्मीस प्रकृतिबोकी उत्कृष्ट प्रदेशविमर्शिताले जीव सब जीवोंके अन्तर्गतें भगप्रमाण और शेष जन्मते बहुमागप्रमाण जीव अनुत्कृष्ट प्रदेशविमर्शिताले हात हैं। मात्र सम्बन्ध और सम्बन्धितालेकी सत्तावाला जीव अधिकसे अधिक असंख्यात हो होते हैं। इसलिये इनकी अपेक्षा असंख्यातमें भगप्रमाण उत्कृष्ट विमर्शिताले जीव और असंख्यात बहुमागप्रमाण अनुत्कृष्ट विमर्शिताले जीव होता है। सामान्य विमर्शितालेमें यह प्रत्यक्षा अधिकतर बन जाती है इसलिये इनमें ओपके समान जन्मनेकी सूचना की है। मात्र गतिस्वम्भी शेष अजपम्ब भद्रोंमें अपने अपने संख्यातप्रमाणको दृष्टिमें रख कर इसका विचन करना चाहिए। जपम्ब और अजपम्ब प्रदेशविमर्शिताली अपेक्षा मागामागका विचार उत्कृष्टके समान ही है वह स्पष्ट ही है इसलिये इसकी अपेक्षा पूर्वक विचन न करके उत्कृष्टके समान जन्मनेकी सूचना की है। स्वामान्व माहनीयकमैकी अपेक्षा मागामागका विचार नहीं किया है यहाँ इतना विरोध जानना चाहिए।

परिमाण—इस अनुभागकारमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट चारों प्रदेशविमर्शिताले जीवोंके परिमाणका निर्देश किया गया है। स्वामान्वसे माहनीयकी उत्कृष्ट प्रदेशविमर्शिताले गुणितकर्मविमर्शिताली ओपके पञ्चामान्व हाती है और पक्ष जीव असंख्यात हात हैं इसलिये माहनीयकी उत्कृष्ट प्रदेशविमर्शिताले जीवोंका परिमाण असंख्यात है। इसके सिवा शेष सब संख्या जीवोंके अनुत्कृष्ट प्रदेशविमर्शिताले हाती है, इसलिये उनका परिमाण जन्मते है। विमर्शिताले, पाद कपाक और आठ माहनीयकी अपेक्षा यह परिमाण इसी प्रकार बन जाता है, इसलिये इनकी उत्कृष्ट और

अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवालोंका परिमाण भी उक्त प्रकारसे ज्ञान लेना चाहिए । पर सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति दर्शनमोहनीयकी क्षणिकाके समय तथा चार संज्वलन और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति क्षणिकाके पूर्व यथास्थान प्राप्त होती है, इसलिए इनकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवालोंका परिमाण संख्यात और अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवालोंका परिमाण सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अपेक्षा असंख्यात तथा शेषकी अपेक्षा अनन्त होता है । यह ओघप्ररूपणा है । गतिमार्गणाके अवान्तर भेदोंमें स्वामित्वके अनुसार अपनी अपनी विशेषताको जानकर इसे घटित कर लेना चाहिए । जघन्य और अजघन्य प्रदेशविभक्तिकी अपेक्षा विचार करने पर सब प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका परिमाण संख्यात और अजघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका परिमाण सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अपेक्षा असंख्यात तथा शेषकी अपेक्षा अनन्त प्राप्त होता है । कारणका विचार स्वामित्वको देख कर लेना चाहिए । गतिमार्गणा आदिके अन्य भेदोंमें भी स्वामित्वका विचार कर सामान्यसे मोहनीय और सब प्रकृतियोंकी अपेक्षा यह परिमाण ज्ञान लेना चाहिए । विशेष विचार मूलमें किया हो है ।

क्षेत्र—मोहनीयकी उत्कृष्ट और अजघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है । तथा अनुत्कृष्ट और अजघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका क्षेत्र सब लोक है । मोहनीयकी उत्तर प्रकृतियोंकी अपेक्षा भी यह क्षेत्र इसी प्रकार जानना चाहिए । मात्र सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अपेक्षा कुछ विशेषता है । बात यह है कि इन प्रकृतियोंकी सत्तावाले कुन जीव ही असंख्यात हैं, इसलिए इनके चारों पदवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है । यह ओघ प्ररूपणा है । गति आदि अन्य मार्गणाओंमें अपनी अपनी विशेषता जानकर क्षेत्रका विचार कर लेना चाहिए ।

स्पर्शन—सामान्यसे मोहनीय और छन्वीस प्रकृतियोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट और अजघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग तथा अनुत्कृष्ट और अजघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग तथा शेष पदवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग, त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग और सर्वलोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । कारणका विचार स्वामित्वको देखकर कर लेना चाहिए । यह ओघप्ररूपणा है । गति आदि अन्य मार्गणाओंमें अपनी अपनी विशेषताको समझकर यह स्पर्शन घटित कर लेना चाहिए ।

नाना जीवोंकी अपेक्षा काल—सामान्यसे मोहनीयकी तथा मिथ्यात्व, वारह कषाय और आठ नोकपार्योंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति यदि नाना जीव युगपत् करें तो एक समय तरु करते हैं और निरन्तर करें तो आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक करते रहते हैं, इसलिए इनकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलि ५ असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है । तथा इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका काल सर्वदा है यह स्पष्ट ही है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, चार संज्वलन और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति एक साथ या लगातार करनेवाले जीव संख्यातसे अधिक नहीं होते, इसलिए इनकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय प्राप्त होता है । तथा इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका काल सर्वदा है, क्योंकि इनकी सत्तावाले जीवोंका सर्वदा सद्भाव बना रहता है । यह ओघसे उत्कृष्ट प्ररूपणा है । जघन्य

पदनिक्षेप—भुजगारविशेषको पदनिक्षेप कहते हैं। इस अधिकारमें उत्कृष्ट वृद्धि, उत्कृष्ट हानि, जघन्य वृद्धि और जघन्य हानि तथा अवस्थितपद इन सबका आश्रय लेकर समुत्कीर्तना, स्वामित्व और अल्पबहुत्व इन तीन अधिकारोंके द्वारा मूल और उत्तरप्रकृतियोंके प्रदेशसत्कर्मका विचार किया गया है।

वृद्धि—पदनिक्षेपविशेषको वृद्धि कहते हैं। इस अधिकारमें यथासम्भव वृद्धि और हानिके अवान्तर भेदों तथा यथासम्भव अवक्तव्यविभक्ति और अवस्थितविभक्तिका आश्रय लेकर समुत्कीर्तना, स्वामित्व, एक जीवकी अपेक्षा काल, एक जीवकी अपेक्षा अन्तर, नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचय, भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्पबहुत्व इन तेरह अधिकारोंके द्वारा मूल और उत्तर प्रकृतियोंके प्रदेशसत्कर्मका विचार किया गया है।

सत्कर्मस्थान—मूल और उत्तर प्रकृतियोंके प्रदेशसत्कर्मस्थान कितने हैं इसका निर्देश करते हुए मूलमें बतलाया है कि उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मका जिस प्रकार कथन किया है उसी प्रकार प्रदेशसत्कर्मस्थानोंका भी कथन कर लेना चाहिये। फिर भी विशेषताका निर्देश करते हुए प्रकृतमें प्ररूपणा, प्रमाण और अल्पबहुत्व ये तीन अधिकार उपयोगी बतलाये हैं।

भीनाभीनचूलिका

पहले उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य प्रदेशविभक्तिका विस्तारके साथ विचार करते समय यह बतला आये हैं कि जो गुणितकर्मांशिक जीव उत्कर्षण द्वारा अधिकसे अधिक प्रदेशोंका सञ्चय करता है उसके उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है और जो क्षणितकर्मांशिक जीव अपकर्षण द्वारा कर्मप्रदेशोंको कमसे कम कर देता है उसके जघन्य प्रदेशविभक्ति होती है, इसलिए यहाँपर यह प्रश्न उठता है कि क्या सब कर्मपरमाणुओंका उत्कर्षण या अपकर्षण होना सम्भव है, बस इसी प्रश्नका समाधान करनेके लिए यह भीनाभीन नामक चूलिका अधिकार अलगसे कहा गया है। साथ ही इसमें सक्रमण और उदयकी अपेक्षा भी इसका विचार किया गया है। इस सबका विचार यहाँपर चार अधिकारोंका आश्रय लेकर किया गया है। वे अधिकार ये हैं—समुत्कीर्तना, प्ररूपणा, स्वामित्व और अल्पबहुत्व।

समुत्कीर्तना—इस अधिकारमें अपकर्षण, उत्कर्षण, सक्रमण और उदयसे भीन और अभीन स्थितिवाले कर्मपरमाणुओंके अस्तित्वकी सूचना मात्र दी गई है। प्रकृतमें भीन शब्दका अर्थ रहित और अभीन शब्दका अर्थ सहित है। तदनुसार जिन कर्मपरमाणुओंका अपकर्षण, उत्कर्षण, सक्रमण और उदय होना सम्भव नहीं है वे अपकर्ष, उत्कर्षण, सक्रमण और उदयसे भीन स्थितिवाले कर्मपरमाणु माने गये हैं। और जिन कर्मपरमाणुओं के ये अपकर्षण आदि सम्भव हैं वे इनसे अभीन स्थितिवाले कर्मपरमाणु माने गये हैं।

प्ररूपणा—इस अधिकारमें अपकर्षण आदिसे भीन और अभीन स्थितिवाले कर्मपरमाणु कौन हैं इसका विस्तारके साथ विचार किया गया है। उसमें भी सर्वप्रथम अपकर्षणकी अपेक्षा विचार करते हुए बतलाया गया है कि उदयाचलिके भीतर स्थित जितने कर्मपरमाणु हैं वे सब अपकर्षणसे भीनस्थितिवाले और शेष सब कर्मपरमाणु अपकर्षणसे अभीन स्थितिवाले हैं। तात्पर्य यह है कि उदयाचलिके भीतर स्थित कर्मपरमाणुओंका अपकर्षण न होकर वे क्रमसे यथावस्थित रहते हुए निर्जराको प्राप्त होते हैं, इसलिए वे अपकर्षणके अयोग्य होनेके कारण अपकर्षणसे भीन

स्थितिवाले माने गये हैं। किन्तु इनके सिवा शेष जितने कर्मोक्तिपेक हैं उनके कर्मपरमाणुओंका अपकर्षण हो सकता है, इसलिय वे इसके योग्य होनेके कारण अपकर्षणसे अश्वीन स्थितिवाले मान गये हैं। यहाँपर इतना विशेष समझना चाहिए कि वदबाबल्लिसे ऊपर प्रत्यक्ष निपेक्षमें ऐसे बहुतसे कर्मपरमाणु होते हैं जो निश्चितरूप होते हैं अतः उनका भी अपकर्षण नहीं होता। पर वे सर्वथा अपकर्षणके अयोग्य नहीं होते क्योंकि इरौनमोहनीय और अनन्तगुणधर्मसम्बन्धी ऐसे परमाणुओंका अतिवृत्तिपरममें प्रवृत्ति करनेपर और चारित्रमोहनीयसम्बन्धी ऐसे परमाणुओंका अतिवृत्तिपरम गुणस्थानमें प्रवृत्ति करनेपर निश्चित और निश्चितताकरणकी व्युत्पत्ति हो जानेसे अपकर्षण होन लगाता है, इसलिय प्रकृतमें वे कर्मपरमाणु भी अपकर्षणसे मीन स्थितिवाले हैं इसका निर्देश नहीं किया है, क्योंकि अबस्वाभिसेपमें इनमें अपकर्षणकी योग्यता मान ली गई है। परन्तु व्यावहारिक मीतर स्थित जितने कर्मपरमाणु होते हैं उनमें प्रिक्काशमें भी ऐसी बाधता नहीं पाई जाती है अतः प्रकृतमें मात्र वदबाबल्लिसे मीतर स्थित कर्मपरमाणुओंको ही अपकर्षणसे मीन स्थितिवाला बतझाया गया है। सासादन गुणस्थानमें इरौनमोहनीयका अपकर्षण नहीं होता इसलिय यहाँपर भी यही समाधान समझ लेना चाहिए।

वदकर्षणकी अपेक्षा मीन और अमीन स्थितिवाले कर्मपरमाणुओंका निर्देश करते हुए जो कुछ कहा गया है उसका यह भाव है कि व्यावहारिक मीतर स्थित कर्मपरमाणुओंका वदकर्षण नहीं होता। व्यावहारिक बाहर परि विषयित कर्मका वन्ध हो रहा है तो ही इसके सत्यमें स्थित कर्मपरमाणुओंका वदकर्षण होता है। उसमें भी जिन कर्मपरमाणुओंकी शक्तिस्थिति वदकर्षणके योग्य हो उनका ही वदकर्षण होता है अन्यथा नहीं। भूतार्थ इस प्रकार है—मात्र जो व्यावहारिकसे वपरितन स्थितिमें स्थित जो निपेक्ष है उसके जिन परमाणुओंकी शक्तिस्थिति अपनी वदक स्थितिसे वपरि है। अर्थात् जिन्हें वैसे हुए एक समय अधिक व्यावहारिकसे स्थितिसे वपरि काज भीत कुछ है उन कर्मपरमाणुओंका वदकर्षण नहीं होता क्योंकि इन कर्मपरमाणुओंमें शक्तिस्थितिअ अत्यन्त अभाव है। इसी स्थितिमें स्थित निपेक्षके जिन कर्मपरमाणुओंकी शक्तिस्थिति एक समय शेष है। अर्थात् जिन्हें वैसे हुए दो समय अधिक व्यावहारिकसे स्थितिसे वपरि काज भीत कुछ है उन कर्मपरमाणुओंका भी वदकर्षण नहीं होता क्योंकि यहाँपर निश्चितता का अभाव है ही अतिस्वाप्ता भी कमसे कम वदक्य आवापा प्रमाण नहीं पाई जाती। इस प्रकार इसी स्थितिमें स्थित निपेक्षके जिन कर्मपरमाणुओंकी शक्ति स्थिति दो समय और तीन समय आदिमें वदक्य अत्यन्त अभाव आवापाप्रमाण शेष है। अर्थात् जिन्हें वैसे हुए वदक्य आवापासे स्थिति कर्मस्थितिसे वपरि काज भीत कुछ है उन कर्मपरमाणुओंका भी वदकर्षण नहीं होता क्योंकि यहाँपर अतिस्वाप्ताके पूर हो जानेपर भी निपेक्षका अत्यन्त अभाव है। इसी स्थितिमें स्थित निपेक्षके जिन कर्मपरमाणुओंकी शक्तिस्थिति एक समय अधिक व्यावहारिकसे अत्यन्त अभाव आवापासे स्थिति कर्मस्थितिसे वपरि काज भीत कुछ है उन कर्मपरमाणुओंका एक समय अधिक व्यावहारिकसे अत्यन्त अभाव आवापाके कारणकी स्थितिमें निपेक्ष होगा सम्भव है, क्योंकि यहाँपर अतिस्वाप्ताके साथ एकसमय प्रमाण निपेक्ष व दोनों पाये जात हैं। इसी प्रकार इसी स्थितिमें स्थित निपेक्षके जिन कर्मपरमाणुओंकी शक्तिस्थिति दो समय अधिक वदक्य आवापाप्रमाण तीन समय अधिक वदक्य आवापाप्रमाण इत्यादि कमसे एक वर्ष, वर्षद्वय, एक सागर, सागरद्वय, दस सागर, दस सागरद्वय, सो सागर, सो सागरद्वय, द्वात्रिंश सागर, द्वात्रिंश सागरद्वय, सप्त सागर, सप्त सागरद्वय, कोटि सागर, कोटि सागरद्वय, अन्तःकोटि, कोटि, कोटि सागर और

कोडाकोडी सागरपृथक्त्वप्रमाण शेष है। अर्थात् उक्त शेष स्थितिको छोड़कर वाकी की कर्मस्थिति के बराबर काल वीत चुका है तो उन कर्म परमाणुओं का आवाधाप्रमाण अतिस्थापना को छोड़कर अपनी-अपनी योग्य शेष रही शक्तिस्थितिप्रमाण स्थिति तक उत्कर्षण हाकर निक्षेप होना सम्भव है।

यहाँ यह जो एक समय अधिक उद्यावलि की अन्तिम स्थितिको माध्यम बनाकर उत्कर्षण-का विचार किया जा रहा है सो उस स्थितिमें किस निषेकके कर्मपरमाणु हैं और किसके नहीं हैं इसका विचार करते हुए बतलाया है कि जिसका बन्ध किये हुए एक समय, दो समय और तीन समय आदिके क्रमसे एक आवलि काल व्यतीत हुआ है उन सब निषेकोंके कर्मपरमाणु विवक्षित स्थितिमें नहीं पाये जाते। कारण यह है कि बन्धके बाद एक आवलिकाल तक न्यूनतम बन्धका अपकर्षण नहीं होता और आवाधा कालके भीतर निषेक रचना नहीं होती, अतः विवक्षित स्थितिके पूर्व एक आवलि काल तक बन्धको प्राप्त होनेवाले कर्मपरमाणुओंको उस स्थितिमें नहीं पाया जाना स्वाभाविक है। हा इस एक आवलिसे पूर्व बन्धको प्राप्त हुए समयप्रवर्द्धोंके कर्म परमाणु अपकर्षण होकर बहा पाये जाते हैं इसमें कोई बाधा नहीं आती। फिर भी ऐसे कर्म-परमाणुओंका यदि उत्कर्षण हो तो उनका निक्षेप एक समय अधिक एक आवलिकम कर्मस्थितिके अन्ततक हो सकता है। मात्र इनका निक्षेप तत्काल बंधनेवाले कर्मके आवाधा कालके ऊपर ही होगा यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए। यह दूसरी प्ररूपणा है जो नवकबन्धकी मुख्यतासे की गई है। पहली प्ररूपणा प्राचीन सत्तामें स्थित कर्मों की मुख्यतासे की गई थी, इसलिए ये दोनों प्ररूपणाएँ स्वतंत्र होनेसे इनका मूलमे अलग अलग विवेचन किया गया है।

यहा दूसरी प्ररूपणाके समय अवस्तुविकल्पोंका भी निर्देश किया गया है। किन्तु प्रथम प्ररूपणाके समय उनका निर्देश नहीं किया गया है, इसलिए यहा यह शंका होती है कि क्या प्रथम प्ररूपणाकी अपेक्षा एक भी अवस्तु विकल्प नहीं होता सो इसका समाधान यह है कि अवस्तु-विकल्प तो वहाँ भी सम्भव है। अर्थात् विवक्षित स्थिति (एक सनय अधिक उद्यावलि की अन्तिम स्थिति) में इससे पूर्व उद्यावलिप्रमाण निषेकोंका सद्भाव नहीं पाया जाता फिर भी यह बात बिना कहे ही ज्ञात हो जाती है, इसलिए प्रथम प्ररूपणाके समय इन अवस्तु विकल्पोंका निर्देश नहीं किया है। विशेष खुलासा मूलमें यथास्थान किया ही है, इसलिए इसे वहासे विशेष रूपसे समझ लेना चाहिए।

उद्यावलिके ऊपर जो प्रथम स्थिति है उसकी विवक्षासे यह प्ररूपणा की गई है। किन्तु इसके ऊपरकी स्थितिकी अपेक्षा प्ररूपणा करने पर अवस्तुविकल्प एक बढ़ जाता है, क्योंकि उद्यावलिके भीतरकी सब स्थितियोंमें स्थित निषेकोंके कर्मपरमाणु तो इसमें पाये ही नहीं जाते, साथ ही उससे उपरितन स्थितिमें स्थित निषेकके कर्मपरमाणु भी नहीं पाये जाते, क्योंकि इन निषेकोंमें स्थित कर्मपरमाणुओंकी शक्तिस्थिति इस विवक्षित स्थितिके पूर्व ही समाप्त हो जाती है। तथा भीनस्थितिविकल्प एक कम होता है, क्योंकि आवाधामें एक समयकी कमी हो जानेसे भीनस्थितिविकल्पोंमें भी एक समयकी कमी हो गई है। मात्र इसकी अपेक्षा अमीन स्थितियोंमें भेद नहीं है। यह प्रथम प्ररूपणाकी अपेक्षा विचार है। इसी प्रकार दूसरी प्ररूपणाको ध्यानमें रखकर विचार कर लेना चाहिए। तथा आगे भी इसी प्रकार विचार कर किस निषेकके कितने कर्मपरमाणु उत्कर्षणसे भीनस्थिति हैं और कितने कर्मपरमाणु अमीनस्थिति हैं। साथ ही उनमें अवस्तुविकल्प कितने हैं और जिनका उत्कर्षण हो सकता है उनका वह कहीं तक होता है इत्यादि

है। जो कर्मपरमाणु बन्धके समय जिस स्थितिमें निक्षिप्त होते हैं वे यदि उत्कर्षण या अपकर्षण हुए बिना उदयकालमें उसी स्थितिमें रहते हैं तो उनकी यथानिपेक्षस्थितिप्राप्त संज्ञा है। तथा बन्धके समय जो कर्मपरमाणु जिस निपेक्षस्थितिमें प्राप्त हुए हैं वे उदयके समय यदि उसी निपेक्षस्थितिमें न रहकर जहाँ कहीं दिखलाई देते हैं तो उनकी उदयस्थितिप्राप्त संज्ञा है। इसप्रकार उत्कृष्टस्थितिप्राप्त आदिके भेदसे ये कर्मपरमाणु चार प्रकारके हैं यह निश्चित होता है।

स्वामित्व—इस अधिकारमें मिथ्यात्व आदि अवान्तर प्रकृतियोंकी अपेक्षा उक्त चार प्रकारके कर्मपरमाणुओंके उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य ये चार भेद करके उनके स्वामित्वका विचार किया गया है।

अल्पबहुत्व—इस अधिकारमें उक्त सब भेदोंके अल्पबहुत्वका विचार किया गया है।

इसप्रकार इतना कथन करनेके बाद चूलिका सहित प्रदेशविभक्ति अधिकार समाप्त होता है।

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
एक बीघड़ी अपेक्षा कम	१-२५	एक प्रवृत्तिबोधी अपेक्षा कम-अवकम	
मिथ्यात्वकी उत्पत्ति और अनुपत्ति प्रदेश		मायामत्तका विचार	४
विश्लेषिका अन्त	२	परिमाण	४७-५३
अनुपत्ति प्रदेशविश्लेषिके कालका अवयव अन्तरे		एक प्रवृत्तिबोधी अपेक्षा उत्पत्ति-अनुपत्ति	
निर्देश	३	परिमाणका विचार	४
ऐप कमोंके कालका निर्देश	४	एक प्रवृत्तिबोधी अपेक्षा अवयव और अवकम	
अवयव और अवयवविश्लेषिके कालमें		परिमाणका निर्देश	४३
विश्लेषिका निर्देश	५	क्षेत्रका निर्देश	४४
एक प्रवृत्तिबोधी अवयव कालके आन्तेकी तुलनामात्र	५	उत्पत्ति और अनुपत्ति क्षेत्रका निर्देश	४४
उत्पत्तिबोधी अनुपत्ति उत्पत्ति और अनुपत्ति		अवयव और अवयव क्षेत्रका निर्देश	४४
कालका निर्देश	७	स्पर्शनका कथन	४५-५१
अवयव और अवयव कालका निर्देश	१७	उत्पत्ति और अनुपत्ति स्पर्शनका कथन	४५
एक बीघड़ी अपेक्षा अन्तर	२५-३७	अवयव और अवयव स्पर्शनका कथन	४७
मिथ्यात्वकी उत्पत्ति प्रवृत्तिविश्लेषिका अन्तर	२३	नानाबीबोधी अपेक्षा काल	५०-५३
ऐप कमोंके अन्तरके आन्तेकी तुलना	२९	उत्पत्ति अनुपत्ति कालका कथन	५१
अवयव और अवयवविश्लेषिके अन्तरके विवरण		अवयव और अवयव कालका कथन	५३
विश्लेषिका निर्देश	२९	मायमबीबोधी अपेक्षा अन्तर	५३-५४
एक प्रवृत्तिबोधी अन्तरकाकालके आन्तेकी तुलनामात्र	२७	उत्पत्ति और अनुपत्ति अन्तरका कथन	५९
उत्पत्तिबोधी अनुपत्ति उत्पत्ति और अनुपत्ति		अवयव और अवयव अन्तरका कथन	५४
अन्तरका निर्देश	२७	समिक्रमका कथन	५४-७४
अवयव और अवयव अन्तरका निर्देश	३२	उत्पत्ति विधिकर्षका कथन	५४
मायमबीबोधी अपेक्षा मङ्गलविचार	३७-३८	अवयव विधिकर्षका कथन	५९
वृत्तिविचारकी तुलनामात्र	३७	अवयवविश्लेषिका कथन	७३-१३३
एक प्रवृत्तिबोधी अपेक्षा उत्पत्ति-अनुपत्ति		प्रोपे उत्पत्ति प्रदेश अवयवविश्लेषिका कथन	७४
प्रवृत्तिविश्लेषिका मङ्गलविचार	३७	नरकगतिमें उत्पत्ति प्रदेश अवयवविश्लेषिका कथन	८२
एक प्रवृत्तिबोधी अपेक्षा अवयव-अवयव प्रदेश		ऐप विधिकर्षका उत्पत्ति प्रदेश अवयवविश्लेषिके	
विश्लेषिका मङ्गलविचार	३८	आन्तेकी तुलना	८
मायममात्र	३८-४१	एकेविधिकर्षके उत्पत्ति प्रदेश अवयवविश्लेषिका कथन	८१
एक प्रवृत्तिबोधी अपेक्षा उत्पत्ति-अनुपत्ति		प्रोपे अवयव प्रदेश अवयवविश्लेषिका उत्पत्ति	
मायममात्रका विचार	३८	निर्देश	८३
		नरकगतिमें अवयव प्रदेश अवयवविश्लेषिका कथन	८१६

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
शेष गतियोंमें जघन्य प्रदेश अल्पबहुत्वके जाननेकी सूचना	१२३	भागाभाग	२११
मनुष्यगतियमें ओषके समान जाननेकी विशेष सूचना	१२३	परिमाण	२१६
एकेन्द्रियोंमें जघन्य प्रदेश अल्पबहुत्वका कथन	१२४	क्षेत्र	२१७
भुजगार विभक्तिका कथन	१३३-१७१	स्पर्शन	२१८
भुजगार विभक्तिके तेरह अनुयोगद्वारोंका नामनिर्देश	१३३	नान जीवोंकी अपेक्षा काल	२२२
समुत्कीर्तना	१३३	नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर	२२६
स्वामित्व	१३४	भाव	२२६
एक जीवकी अपेक्षा काल	१३६	अल्पबहुत्व	२२६
एक जीवकी अपेक्षा अन्तर	१४२	सत्कर्मस्थान	२३५-२३५
नानाजीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचय	१४६	मङ्गलाचरण	२३४
भागाभाग	१५०	सत्कर्मस्थानोंका कथन	२३४
परिमाण	१५३	तीन अनुयोगद्वारोंका नामनिर्देश	२३४
क्षेत्र	१५५	प्ररूपणा	२३४
स्पर्शन	१५६	प्रमाण	२३५
नानाजीवोंकी अपेक्षा काल	१६३	अल्पबहुत्व	२३५
नानाजीवोंकी अपेक्षा अन्तर	१६६	भीनाभीनचूलिका	२३५-३६६
भाव	१८६	मङ्गलाचरण	२३५
अल्पबहुत्व	१६६	भीन और अभीन पदकी विशेष व्याख्या	
पदनिक्षेप	१७१-१८७	जाननेकी सूचना	२३५
पदनिक्षेप और वृद्धिका स्वरूपनिर्देश	१७१	विभाषा शब्दका अर्थ	२३६
पदनिक्षेपके तीन अनुयोगद्वारोंके नाम	१७२	भीनाभीन अधिकारके कथनकी सार्थकता	२३६
उत्कृष्ट समुत्कीर्तना	१७२	यह अधिकार चूलिका क्यों कहा गया है इसका निर्देश	२३६
जघन्य समुत्कीर्तनाकी सूचनामात्र	१७३	प्रकृतमें चार अनुयोगद्वारोंका नामनिर्देश	२३७
उत्कृष्ट स्वामित्व	१७३	समुत्कीर्तना पदका अर्थ	२३७
जघन्य स्वामित्व	१८४	समुत्कीर्तना अनुयोगद्वार	२३७-२३८
उत्कृष्ट अल्पबहुत्व	१८५	अपकर्षण आदिकी अपेक्षा भीनस्थितिक	
जघन्य अल्पबहुत्व	१८६	कर्मोंका अस्तित्व कथन	२३७
वृद्धिविभक्ति कथन	१८७-२३४	विशेष खुलासा	२३७
तेरह अनुयोगद्वारोंकी सूचना	१८७	प्ररूपणा अनुयोगद्वार	२३७-२७५
समुत्कीर्तना	१८७	कौन कर्म अपकर्षणसे भीनस्थितिक हैं इसका निर्देश	२३६
स्वामित्व	१८६	अपकर्षणसे अभीनस्थितिक कर्मोंका व्याख्यान	२४०
एक जीवकी अपेक्षा काल	१८३	कौन कर्म उत्कर्षणसे भीनस्थितिक हैं इसका निर्देश	२४२
एक जीवकी अपेक्षा अन्तर	२०१	कौन कर्म उत्कर्षणसे अभीनस्थितिक हैं इसका निर्देश	२४७
नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचय	२०८		

विषय	पृष्ठ
एक समान अर्थिक उद्भावितकी अन्तिम स्थितिमें नवव्यवस्था के बीन कर्मपरामाणु नहीं हैं इल्का निर्रेण	२३१
उसी स्थितिमें बीन परामाणु हैं "उका निर्रेण	२३२
उस स्थितिमें नवव्यवस्था के बी कर्मपरामाणु हैं उनका किन्ना उत्कर्ष हो उठता है इल्का निर्रेण	२३३
दो समान अर्थिक उद्भावितकी अन्तिम स्थितिकी अपेक्षा कथन	२३८
दोन समान अर्थिक आदितसे लेकर आदितकम आताका एक की स्थितिमेंकी अपेक्षा बान्नेकी एकना	२३
एक समान कम आदितसे न्यून आताकाकी अन्तिम स्थितिमें कितने विक्षय नहीं होते हैं और कितने विक्षय होते हैं इल्का निर्रेण	२३१
नो होते हैं उनमें बीन उत्कर्षसे मीन-स्थिति हैं और बीन अमीनस्थिति हैं इल्का निर्रेण	२३१
एक समान कम आदितसे न्यून आताकाकी अन्तिम स्थितिसे विक्षयका कथन करके जानेकी एक समान अर्थिक स्थितिसे विक्षयका निर्रेण व उत्कर्षसे मीन-मीन बिचार	२३३
उससे एक समान अर्थिक स्थिति की अपेक्षा पूर्वोक्त प्रकारत बिचार	१
एक समान अर्थिक कथन आताका एक पूर्वोक्त कम बजता है इल्का निर्रेण	२०१
दो समान अर्थिक कथन आताकासे लेकर उत्कर्षसे मीनस्थिति कर्मप्रदेश मरी होते इल्का निर्रेण	२०२
संक्रमणसे मीनस्थिति और अमीनस्थिति कर्मप्रदेशोंका निर्रेण	२ ३
उत्कर्षसे मीनस्थिति और अमीनस्थिति कर्म प्रदेशोंका निर्रेण	२०४

विषय	पृष्ठ
पूर्वोक्त प्रत्येक मीनस्थिति कर्म उत्कर्ष आदि की अपेक्षा बार प्रकाशके होते हैं इल्का निर्रेण	२०३
स्वामित्व	२०५-२१३
मिथ्यात्वके अपेक्षेवादि बायेकी अपेक्षा मीन-स्थिति कर्मों के उत्कर्ष स्वामी का निर्रेण	२०५
सम्पत्तकी अपेक्षा उत्कर्ष स्वामित्वका निर्रेण	२०८
सम्पत्तिमिताकी अपेक्षा उत्कर्ष स्वामित्वका निर्रेण	२०७
अन्यतातुल्यकी अपेक्षा उत्कर्ष स्वामित्वका निर्रेण	२११
मन्त्री आठ क्वाकोकी अपेक्षा उत्कर्ष स्वामित्वका कथन	२१४
क्रोड-लक्षनकी अपेक्षा उत्कर्ष स्वामित्व कथन ३	
मानलक्षनकी अपेक्षा उत्कर्ष स्वामित्व कथन ३ २	
मावतलक्षनकी अपेक्षा उत्कर्ष स्वामित्व कथन ३ ३	
खोमलक्षनकी अपेक्षा उत्कर्ष स्वामित्व कथन ३ ३	
अविदकी अपेक्षा उत्कर्ष स्वामित्व कथन ३ ३	
पुनवेदकी अपेक्षा उत्कर्ष स्वामित्व कथन ३ ३	
नपु लवेदकी अपेक्षा उत्कर्ष स्वामित्वका कथन	३ ७
आठ मोडवाकी अपेक्षा उत्कर्ष स्वामित्व कथन ३ ८	
मिथ्यात्वकी अपेक्षा कथन स्वामित्व कथन ३ १२	
सम्पत्तकी अपेक्षा कथन स्वामित्व कथन ३ २	
सम्पत्तिमिताका कथन स्वामित्व सम्पत्तके समान बान्नेकी एकना	३ २२
आठ क्वाव बार लक्षन पुनवेद, हास्व, र्छि, मन और जगुणाकी अपेक्षा कथन स्वामित्व	३ २१
अन्यतातुल्यकी अपेक्षा कथन स्वामित्व	३ २८
नपु लवेदकी अपेक्षा कथन स्वामित्व	३ ३४
अविदकी अपेक्षा कथन स्वामित्व	३ ३५
आदि-लोकाकी अपेक्षा कथन स्वामित्व	३ ३
अस्वबुद्ध	३ ३-३ ३३
मिथ्यावाद प्रवृत्तिमें बायेकी अपेक्षा उत्कर्ष अस्वबुद्ध	३ ३१
कथन मीनस्थिति अस्वबुद्ध	३ ३८

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
स्थितिगचूलिका	३६६-४५१	नपु सकवेदके उत्कृष्ट अग्रस्थितिप्राप्त आदि	
मङ्गलाचरण	३६६	द्रव्यके स्वामित्वका निर्देश	४२३
स्थितिग पदकी विभाषाकी सूचना	३६६	जघन्य स्थितिप्राप्त द्रव्यके स्वामित्वके जाननेकी	
स्थितिग पदका अर्थ	३६६	सूचना	४२३
यह अधिकार भी चूलिका है इसका निर्देश	३६७	सब कमोंके जघन्य अग्रस्थितिप्राप्त द्रव्यके	
प्रकृतोपयोगी तीन अनुयोगद्वारोंका नामनिर्देश	३६७	स्वामीका निर्देश	४२४
तीनों अनुयोगद्वारोंका लक्षणनिर्देश	३६७	मिथ्यात्वके निषेकस्थितिप्राप्त और उदय-	
समुत्कीर्तना	३६६-३७४	स्थितिप्राप्त द्रव्यके स्वामीका निर्देश	४२४
स्थितिप्राप्त द्रव्य चार प्रकारका है इसका		मिथ्यात्वके यथानिषेकस्थितिप्राप्त द्रव्यके स्वामी-	
निर्देश	३६७	का निर्देश	४३०
उत्कृष्ट स्थितिप्राप्त द्रव्यका स्वरूप कथन	३६८	सम्यक्त्वके यथानिषेकस्थितिप्राप्त द्रव्यके स्वामी-	
निषेकस्थितिप्राप्त द्रव्यका स्वरूपनिर्देश	३७०	को मिथ्यात्वके समान जाननेकी सूचना,	
यथानिषेकस्थितिप्राप्त द्रव्यका स्वरूपनिर्देश	३०१	साथ ही कुछ विशेषताका निर्देश	४३५
उदयस्थितिप्राप्त द्रव्यका स्वरूपनिर्देश	३७२	सम्यक्त्वके निषेकस्थितिप्राप्त और उदयस्थिति-	
प्रत्येकके उत्कृष्टादि चार भेदोंका निर्देश	३७३	प्राप्त द्रव्यके जघन्य स्वामीका निर्देश	४३६
स्वामित्व	३७४-४४५	सम्यग्मिथ्यात्वके यथानिषेकस्थितिप्राप्त	
मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अग्रस्थितिप्राप्त आदि		द्रव्यका स्वामी सम्यक्त्वके समान है इसका	
द्रव्यके स्वामित्वका निर्देश	३७४	अपनी विशेषताके साथ निर्देश	४३७
सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अग्रस्थिति-		सम्यग्मिथ्यात्वके निषेक और उदयस्थितिप्राप्त	
प्राप्त आदि द्रव्यके स्वामित्वका निर्देश	४००	द्रव्यके जघन्य स्वामीका निर्देश	४३८
अनन्तानुबन्धीचतुष्क, आठ कषाय और छह		अनन्तानुबन्धियोंके निषेक और यथानिषेक-	
नोकषायोंका भङ्ग मिथ्यात्वके समान		स्थितिप्राप्त द्रव्यके जघन्य स्वामीका निर्देश	४६८
जाननेकी सूचना	४०३	अनन्तानुबन्धियोंके उदयस्थितिप्राप्त द्रव्यके	
आठ कषायोंके उत्कृष्ट उदयस्थितिप्राप्त द्रव्यके		जघन्य स्वामीका निर्देश	४४०
स्वामित्वमें विशेषताका निर्देश	४०३	बारह कषायोंके निषेक और उदयस्थितिप्राप्त	
छह नोकषायोंके उत्कृष्ट उदयस्थितिप्राप्त द्रव्यके		द्रव्यके जघन्य स्वामीका निर्देश	४४२
स्वामित्वमें विशेषताका निर्देश	४०४	बारह कषायोंके यथानिषेकस्थितिप्राप्त द्रव्यके	
क्रोधसञ्चलनके उत्कृष्ट अग्रस्थितिप्राप्त आदि		जघन्य स्वामीका निर्देश	४४२
द्रव्यके स्वामित्वका निर्देश	४०५	पुरुषवेद, हास्य, रति, भय और गुणप्साके विषय-	
सञ्चलनमान, माया और लोभके विषयमें		में बारह कषायोंके समान जाननेकी सूचना	४४४
सञ्चलन क्रोधके समान जाननेकी सूचना	४१६	स्त्रीवेद, नपु सकवेद, अरति और शोकके यथा-	
पुरुषवेदके चारों स्थितिप्राप्त द्रव्यके उत्कृष्ट		निषेकस्थितिप्राप्त आदि द्रव्यके जघन्य	
स्वामित्वका निर्देश	४२०	स्वामीका निर्देश	४४५
स्त्रीवेदके उत्कृष्ट अग्रस्थितिप्राप्त आदि द्रव्यके		अल्पबहुत्व	४४६-४५१
स्वामित्वका निर्देश	४२०	सब कमोंके चारों उत्कृष्ट स्थितिप्राप्तोंके	
		अल्पबहुत्वका निर्देश	४४६

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
अन्य अस्पृश्योंके बाल्यकी सूचना	४४०	अन्यतापुष्पियोंके चारों बन्धु रिश्तेदारों- के अस्पृश्यता निर्देश	४४१
मिथ्यात्वके चारों बन्धु रिश्तेदारोंके अस्पृश्यता निर्देश	४४०	जीवेद, नपु लङ्गेद अट्टि, और शोकके चारों बन्धु रिश्तेदारोंका अस्पृश्यता अन्यतापुष्पियोंके समान है इत्यादि निर्देश	४४१
उन्मत्त, उन्मत्तिप्यात्, बारह ब्याव पुरुषवेद हास रति, मय और भृगुप्याके चारों बन्धु रिश्तेदारोंका अस्पृश्यता मिथ्यात्वके समान है इत्यादि सूचना	४४१		



कसायपाहुडस्स

प दे स वि ह ती

पंचमो अत्थाहियारो



सिरि-जइवसहाइरियविरइय-चुण्णिमुत्तसमणिणदं

सिरि-भगवंतगुणहरभडारओवइडं

क सा य पा हु डं

तस्स

सिरि-वीरसेणाइरियविरइया टीका

जयधवला

तत्थ

पदेविहत्ती णाम पंचमो अत्थाहियारो



❀ कालो ।

§ १. कालो उच्चदि ति भणिदं होदि ।

❀ काल ।

§ १ कालका कथन करते हैं यह वक्त कथनका तात्पर्य है ।

ॐ मिच्छन्तस्त उच्छस्तपदेसविहसिभो केवचिरं काकायो होवि ।

§ २. सुगम ।

ॐ अह्यण्डस्तेयोगसमभो ।

§ ३ सधमपुडविनेरह्यस्त उच्छस्तामस्त चरिमसमए च वच्छस्तपदेस सर्वकम्पसुबर्शमावो ।

ॐ अण्डस्तपदेसविहसिभो केवचिरं काकायो होवि ।

§ ४ सुगम ।

ॐ अह्यण्डस्तेष्व अपतकात्मसत्तेस्वा योग्यकपरियट्टा ।

§ ५ चदुगदिभिगोदे पडुव एसो कासनिरेसा । जिबभिगोदे पुण पडुव मजा दिमो अपम्वसिदा मळादिमो सपळवसिहो न होदि, अस्तदतसमाबाण्डुवस्त वम्बाणुवचिदो । मज्जुवस्तपदमपिहसीए अण्वकासावदानं कर्णं पडद ? न, वच्छस्तपदेसदाजप्पहुदि जाव मज्जुवदानं ति पदेसु मज्जतेसु दाणेषु अण्वकासावदानं पवि विरोहाभावावो ।

ॐ मिथ्यात्वही वस्तुएं प्रदेशविभक्तियां जीवका कितना कास है ?

§ २. यह सूत्र सुगम है ।

ॐ अपन्य और वस्तुएं कास एक समय है ।

§ ३ क्योंकि सातवीं प्रविशके नारकीके वस्तुएं आयुके अन्तिम समयमें ही वस्तुएं प्रदेशात्मक वस्तुएं होवा है ।

ॐ अजुवस्तुएं प्रदेशविभक्तिका कितना कास है ।

§ ४ यह सूत्र सुगम है ।

ॐ अपन्य और वस्तुएं अनन्त कास है जो असंख्यात पुरुष परिपर्वनोंक बराबर है ।

§ ५ चदुगदिभिगोदे पडुव एसो कासनिरेसा दिवा है । जिब मिगोदे जीवकी प्रवेशा वो चन्दादि-अनन्त और चन्दादि-साग्य कास हावा है, क्यों कि जिब जीवोंने असमायका नहीं प्राप्त किया है उनके वस्तुएं इन्धकी प्राप्ति सम्भव नहीं है ।

शुद्धा—अजुवस्तुएं प्रदेशविभक्तिका अनन्त कासवक अवस्थाम कैसे बन सकता है ?

समाधान—नहीं क्योंकि वस्तुएं प्रदेशस्थानसे लेकर अवस्थ प्रदेशस्थान तक जो चान्द स्थान हैं वन्में अनन्त कास वक अवस्थान होनेमें कोई विरोध नहीं आता है ।

❀ अण्णोवदेसो जहण्णेण असंखेज्जा लोका त्ति ।

§ ६. सव्वे जीवपरिणामा असंखेज्जलोगमेत्ता चेव णाणंता, तहोवदेसाभावादो । तत्थुक्कस्सपदेससंतकम्मकारणपरिणामकलावं मोत्तूण सेसपरिणामहाणेसु अवट्ठाण-कालो जह० असंखेज्जलोगमेत्तो चेव तम्हा अणुक्कस्सपदेसकालो जह० असंखेज्जलोग-मेत्तो त्ति इच्छियव्वो । ण च पदेसुत्तरादिकमेण संतकम्महाणेसु परिव्वभमणणियमो अत्थि, एकसराहेण अणताणि हाणाणि उल्लघियूण वि परिव्वभमणुवत्तंभादो' । एदं केसिं पि आइरियाणं वक्खाणंतंरं । एदेसु दोसु उवदेसेसु एक्केणेव सच्चेण होदव्वं, अण्णोण्णविरुद्धत्तादो । तदो एत्थ जाणिदूण वत्तव्वं ।

❀ अधवा खवगं पडुच्च वासपुधत्तं ।

§ ७. गुणितकम्मसियलक्खणेणागंतूण सत्तमाए पुढवीए उक्कस्सपदेसं करिय पुणो समयाविरोहेण एइंदिससु मणुस्सेसु च उववज्जिय अंतोमुहत्तव्वहिअट्ठवस्सेहि संजमं पडिवज्जिय णिव्वुइं गयम्मि अणुक्कस्सदव्वस्स वासपुधत्तमेत्तकालुवत्तंभादो ।

❀ अन्य उपदेशके अनुसार जघन्य काल असंख्यात लोकप्रमाण है ।

§ ६ कारण कि जीवोंके सब परिणाम असंख्यात लोकमात्र ही होते हैं, अनन्त नहीं होते, क्योंकि इस प्रकारका उपदेश नहीं पाया जाता । उनमेंसे उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मके कारणभूत परिणामकलापको छोड़कर शेष परिणामोंमें अवस्थित रहनेका जघन्य काल असंख्यात लोक-प्रमाण ही है, इसलिए अनुत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मका जघन्य काल असंख्यात लोकप्रमाण है ऐसा स्वीकार करना चाहिए । और उत्तरोत्तर एक एक प्रदेशके अधिकके क्रमसे सत्कर्मस्थानोंमें परिभ्रमण करनेका कोई नियम नहीं है, क्योंकि एक साथ अनन्त स्थानोंको उत्तर्धन करके भी परिभ्रमण पाया जाता है । यह किन्हीं आचार्योंका व्याख्यानान्तर है सो इन दो उपदेशोंमेंसे एक उपदेश ही सत्य होना चाहिए, क्योंकि ये दोनों उपदेश परस्परमें विरोधको लिये हुए हैं, इसलिए यहाँपर जानकर व्याख्यान करना चाहिए ।

❀ अथवा क्षपककी अपेक्षा वर्षपृथक्त्वप्रमाण काल है ।

§ ७ क्योंकि जो जीव गुणितकर्माशिककी विधिसे आकर सातवीं पृथिवीमें उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मको करके पुनः यथाशास्त्र एकेन्द्रियोंमें और मनुष्योंमें उत्पन्न होकर अन्तर्मुहूर्त अधिक आठ वर्ष कालके द्वारा समयको ग्रहणकर मुक्तिको प्राप्त होता है उसके अनुत्कृष्ट द्रव्यका वर्ष पृथक्त्वप्रमाण काल उपलब्ध होता है ।

विशेषार्थ—मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है यह तो स्पष्ट ही है, क्योंकि गुणितकर्माशिकविधिसे आकर जो अन्तर्में उत्कृष्ट आयुके साथ दूसरी बार सातवें नरकमें उत्पन्न होता है उसके अन्तिम समयमें ही मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति देखी जाती है । इसकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिके कालके विषयमें दो उपदेश पाये

⊙ एष सेसायं कस्माप पादुर्य योदम् ।

§ ८ तं जहा —अङ्कसाय-सचचोकासायानं मिच्छत्यर्गो, अङ्गुष्ठसप्तकेरि
वक्त्रसायुक्तसद्व्यवसिपरि ततो मेदामावाहो । अर्थात्पुर्वाधिपञ्चस्य वि मिच्छत्य
यंगो येन । नगरि अङ्गुष्ठस्य अङ्गुष्ठेण अतोमुत्तं, अर्थात्पुर्वाधिपञ्चस्य विसंभोदम
पुनो संभुतो होव्य अतामुत्तरेण विसंभोदमि तदुत्तमाहो । चतुर्त्तमं
पुरितं । चक्रं । अङ्गुष्ठं । एगसं । अङ्गुष्ठं । अणादि-अपञ्चं । अणादि-सपञ्चं
सादि-सपञ्चं । नो सो सादि-सपञ्चं । तस्य अङ्गुष्ठ अतो । इति । चक्रं ।

जाते हैं । एक बप्पेराक अनुसार यह अन्त्य काल प्रमाण बतलाता है । इसकी
व्याख्या करते हुए बीरसेन स्वामीने आशिका है उसका भाव यह है कि निम्न निम्न
जीव दो प्रकारके होते हैं—एक वे आ अन्तक न तो निगोह्ये निकले हैं और न निकलेगी ।
इसकी अपेक्षा या मिच्छात्वकी अनुकूल प्रवेशविमर्शिका काल अन्तदि-अपञ्च है । जो आ
निम्न निगोह्ये निकलकर क्रमसे अनुकूल प्रवेशविमर्शिका अन्त कर देते हैं उनकी अपेक्षा
अन्तदि-सपञ्च काल है । पर चूर्णिसूत्रमें इस शानो प्रकारके कालोंका प्रमाण न कर इतर निगोह्य
जीवोंकी अपेक्षा कालका विचार किया गया है । आशय यह है कि एक बार मिच्छात्वकी अनुकूल
प्रवेशविमर्शिका करके आ क्रमसे इतर निगोह्ये चले जाते हैं चले बहासे निकलकर पुनः अनुकूल
प्रवेशविमर्शिका प्राप्त करनेमें अन्त काल लगता है, इसलिये चूर्णिसूत्रमें मिच्छात्वकी अनुकूल
प्रवेशविमर्शिका अपञ्च और अनुकूल अनन्त काल कहा है । वह एक बप्पेरा है । किन्तु एक
दूसरा बप्पेरा भी मिलता है । इसके अनुसार मिच्छात्वकी अनुकूल प्रवेशविमर्शिका अपञ्च
काल अन्तप्रमाण न प्राप्त होकर अर्धकाल लोकप्रमाण बन जाता है । इन आशयोंके मतसे
इस बप्पेराके कारणका निर्णय करत हुए बीरसेन आचार्य लिखते हैं कि जीवोंके कुछ परियाम
अर्धकाल लोकप्रमाण ही बप्पेरा होते हैं और सब प्रवेशासत्कर्मस्थानोंमें जीव क्रमसे ही प्राप्त
होता है ऐसा कोई नियम नहीं है अतः अपञ्च काल अर्धकाल लोकप्रमाण बननेमें कोई बाधा
नहीं आती । अनुकूलके अपञ्च कालके विषयमें वेदा बप्पेरा हैं । वह कह सकता कटिन है कि
इसमेंसे कौन बप्पेरा सच है, इसलिये यहाँ बान्नेका समझ किया गया है । यह सम्भव है कि
शुद्धितर्कमौलिक जीव सातवें नरकके अन्तमें अनुकूल प्रवेशसंभव करके और बाह्ये निकलकर
क्रमसे अनुकूल होकर वर्षपूजक कालके भीतर मोहमीवका स्वरूप कर दे । इसलिये यहाँ
मिच्छात्वकी अनुकूल प्रवेशविमर्शिका अपञ्च काल वर्षपूजकत्वमात्र भी कहा है ।

⊙ इसी प्रकार शेष कर्मोंका ज्ञानकर ले जामा चाहिए ।

§ ८. सुज्ञासा इस प्रकार है—आठ बप्पेरा और सात लक्षणोंका मङ्ग मिच्छात्वके समान
है क्योंकि अपञ्च और अनुकूल कालकी अपेक्षा तथा अनुकूल और अनुकूल इत्यविरोधकी अपेक्षा
मिच्छात्वके इसमें कोई भेद नहीं है । अन्तानुबन्धीचतुष्कका भी मिच्छात्वके समान ही मङ्ग है ।
इसकी विरोधता है कि इसकी अनुकूल प्रवेशविमर्शिका अपञ्च काल अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि
अन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंवाजना करके और संयुक्त होकर जो अन्तर्मुहूर्तमें पुनः इसकी
विसंवाजना करता है उससे कुछ काल पाया जाता है । बार संयुक्त और पुनःपुनः अनुकूल
प्रवेशविमर्शिका अपञ्च और अनुकूल काल एक समान है । अनुकूल प्रवेशविमर्शिका काल
अन्तदि-अपञ्च, अन्तदि-सपञ्च और सादि-सपञ्च है । इसमें आ सादि-सपञ्च काल है इसकी

जहण्णु० एगस० । अणुक्क० ज० दसवस्ससहस्साणि वासपुधत्तेण सादि०, उक्क०
अणंतकालं । सम्मत्त-सम्माभिच्छत्ताणं उक्क० पदे० वि० केव० कालादो होदि ?
जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ ।

§ ६. एदेसिं चेव अणुक्कस्सदब्बकालपदुप्पायणद्वमुत्तरसुत्तं भणदि—

❀ एवरि सम्मत्त-सम्माभिच्छत्ताण अणुक्कस्सदब्बकालो जहण्णेण
अंतोमुहुत्तं ।

अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। श्रीवेदकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल वर्षपृथक्त्व अधिक दस हजार वर्ष है और उत्कृष्ट अनन्त काल है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेश-विभक्तिका कितना काल है? जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है।

विशेषार्थ—इन सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति अपने अपने उत्कृष्ट स्वामित्वके अन्तिम समयमें होती है, इसलिए यहा सबकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। मात्र जिस प्रकृतिकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिके कालमें कुछ विशेषता है उसका यहाँ स्पष्टीकरण करते हैं। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त क्यों है इसके कारणका निर्देश मूलमें ही किया है। चार सज्जलन और पुरुषवेदकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति अभव्योंकी अपेक्षा अनादि-अनन्त, भव्योंकी अपेक्षा अनादि-सान्त और क्षपकश्रेणिमें सादि-सान्त कही है। क्षपकश्रेणिमें इनकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होनेके बाद अन्तर्मुहूर्त कालतक अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति सम्भव है, इसलिए इनकी सादि-सान्त अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। श्रीवेदकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति गुणितकर्माशिक ऐसे जीवके भी होती है जो अन्तमें पत्यके असख्यातवें भागप्रमाण आयुके साथ असख्यात वर्षकी आयुवाले जीवोंमें उत्पन्न होकर आयुके अन्तिम समयमें स्थित है। उसके बाद यह जीव देव होता है और देव पर्यायसे आकर ऐसे जीवका वर्षपृथक्त्वकी आयुवाला मनुष्य होकर मोक्ष जाना भी सम्भव है। श्रीवेदकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होनेके बाद उसकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका इससे कम काल सम्भव नहीं है। यही कारण है कि यहाँपर इसका जघन्य काल वर्षपृथक्त्व अधिक दस हजार वर्षप्रमाण कहा है। यहाँ जिन प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल कहा गया है उनकी इस विभक्तिका उत्कृष्ट काल मिथ्यात्वके समान ही है यह बिना कहे ही जान लेना चाहिए, क्योंकि कालमें मिथ्यात्वसे जितनी विशेषता थी वही यहाँ पर कही गई है।

§ ६ अब सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके अनुत्कृष्ट द्रव्यके कालका कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

❀ इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके अनुत्कृष्ट द्रव्यका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है।

१०. कुत्रो १ सम्मत्तं पट्टिबन्धगिस्संतकम्मियम्मि सम्मत्तसंतमंतोमुदुत्तं परिय
स्वविद्वंसजमाहणीयम्मि तदुवत्तामादो । उद्वत्तसामियस्स वा स्ववयस्स ममुद्वत्तम्मि
पट्टिप गिस्संतवीकरणेज सम्मत्तइह्णतामुदुत्तमेवकाला पचम्मा, पुम्बिन्सदो वि पदस्स
अह्णमापदंसगगदो ।

ॐ उद्वत्तसेय वेम्मावह्णिसागरोवमाणि साधिरेपाणि ।

११. निस्संतवत्तम्मियम्मिच्छाह्णिम्मि सम्मत्तं पट्टिबन्धिय पुजा मिच्छत्त गतून
पत्ति० अत्तं भाग्मेवकालेण चरिमुम्बन्धनकंदवयस्स चरिमफालीए सैसाए सम्मत्तं
पंचूण पचयम्मावह्णि ममियं पुजा मिच्छत्तं गतून पत्तिदोवमस्स अत्तंसत्तविभागमेव-
कालेण चरिमुम्बन्धनकंदवयस्स चरिमफालीए सैसाए सम्मत्तं पंचूण विदियद्वावह्णि
ममियं पुजा मिच्छत्त गतून पत्तिद्वा अत्तं भाग्मेवकालेणुम्बन्धितसम्मत्त-सम्मा
मिच्छत्तम्मि तदुवत्तामादो ।

६१. क्योंकि इन दो प्रकृतियोंकी सत्तासे रहित या जीव सम्बन्धको प्राप्त करके और
अन्तर्मुहूर्त काल तक सम्बन्धकी सत्ताप्राप्ता होकर अन्तर्मोहनीयकी जपवा करता है उसके
इन दोनों प्रकृतियोंके अनुकूल रूपका अवश्य काल अन्तर्मुहूर्त पावा जाता है । या इनके वस्तु
रूपका स्वामी या जपक जीव इन्हें अनुकूल करके निःसत्त्व कर देता है उसके इनके अनुकूल
रूपका सबसे अवश्य काल अन्तर्मुहूर्त कहना चाहिये, क्योंकि पूर्वोक्त कालसे भी यह काल
अवश्य देखा जाता है ।

ॐ वस्तुतः काल साधिक दो जप्यासठ सागरप्रमाण है ।

११. क्योंकि इन दो प्रकृतियोंकी सत्तासे रहित या मिच्छात्ति जीव सम्बन्धका प्राप्त
होकर पुन मिच्छात्तमें जाकर पच्यके असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक इनकी चेतना करते
हुए अन्तितम चेतनाकाण्डकी अन्तितम पक्षिके शेष रहनेपर सम्बन्धको प्राप्त हुआ और
प्रथम जप्यासठ सागर काल तक प्रमत्त करके पुन मिच्छात्ति हुआ । तथा वहाँ पच्यके अर्ध
क्यातवें भागप्रमाण काल तक चेतना करते हुए प्रथम चेतना काण्डकी अन्तितम पक्षिके
शेष रहनेपर सम्बन्धको प्राप्त करके द्वितीय जप्यासठ सागर काल तक उसके साथ प्रमत्त
करता रहा और अन्तमें मिच्छात्ति होकर पच्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कालके द्वारा जिसने
सम्बन्ध और सम्बन्धित्यकी चेतना की उसके वक्त काल उपलब्ध होता है ।

विशेषार्थ—यहाँपर दो बुद्धिज्ञों द्वारा सम्बन्ध और सम्बन्धित्यकी अनुकूल
प्रवेशविमर्शिके बचन और श्रुत कालका निर्देश किया गया है । ऐसा करते हुए बीरछेन
स्वर्गमें बचन काल दो प्रकारसे घटित करके बतलाया है । प्रथम प्रकारमें या ऐसा जीव
सिखा है जिसके इस दो कर्मोंकी सत्ता नहीं है । ऐसा जीव सम्बन्धित होकर अन्तर्मुहूर्तमें यदि
इसकी जपवा करता है तो उसके इनकी अनुकूल प्रवेशविमर्शिका अन्तर्मुहूर्त काल उपलब्ध
होता है । दूसरे प्रकारमें ऐसा जपक जीव सिखा है या इनकी वस्तु प्रवेशविमर्शिता है ।

❀ जहण्णकालो जाणिदूण णेदव्वो ।

§ १२. सुगमं ।

§ १३. एवं चुण्णिमुत्तमस्सिदूण कालपरुवणं करिय संपहि एत्थुच्चारणाइरिय-
वक्खाणकमं भणिस्सामो । कालो दुविहो—जहण्णओ उक्कस्सओ चेदि । उक्कस्सए
पयदं । दुवि०—ओघे० आदे० । ओघे० मिच्छत्त-अट्ठक०-सत्तणोक० उक्क० पदे०
विहत्ती० केवचिरं काला० ? जहण्णुक० एगस० । अणुक० ज० वासपुधत्तं, उक्क०
अणंतकालमसंखेज्जा पोगगलपरियट्ठा । एवं अणंताणु०चउक्क० । णवरि अणुक० ज०
अंतो० । सम्पत्त-सम्पामि० उक्क० पदेस० जहण्णुक० एगस० । अणुक० ज० अंतो०,
उक्क० वेच्चावट्ठिसागरोमाणि सादि० । चटुसंज०-पुरिसवेदाणं उक्क० पदे० जहण्णुक०

इस जीवके अन्तर्मुहूर्तमें इन कर्मोंकी नियमसे क्षपणा हो जाती है, इसलिए इसके भी इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका अन्तर्मुहूर्त काल उपलब्ध होता है । इस प्रकार अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिके ये दो उदाहरण उपस्थित कर वीरसेन स्वामी प्रथमकी अपेक्षा द्वितीयको ही प्रवृत्तमे उपयुक्त मानते हुए प्रतीत होते हैं, क्योंकि प्रथमकी अपेक्षा अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जितना काल है उससे दूसरे उदाहरणकी अपेक्षा अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका काल स्पष्टतः कम है और जघन्य कालमें जो सबसे न्यून हो वही लिया जाता है । यह तो इन दोनों कर्मोंकी अनुत्कृष्ट प्रदेश-विभक्तिके जघन्य कालका विचार हुआ । उत्कृष्ट कालका स्पष्टीकरण स्वयं वीरसेन स्वामीने किया ही है । यहाँ इतना ही सकेत करना है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्भेदनाका काल पत्यके असंख्यातवै भागप्रमाण होकर भी न्यूनतमिक है, इसलिए जहाँ जिस कर्मकी अन्तिम उद्भेदनाकाण्डकी अन्तिम फालि प्राप्त हो वहा उसके सद्भावमें रहते हुए अन्तिम समयमें ही सम्यक्त्वको प्राप्त कराना चाहिए ।

❀ जघन्य कालको जानकर ले जाना चाहिए ।

§ १२ यह सूत्र सुगम है ।

विशेषार्थ—इस चूर्णिसूत्रमें जघन्य पदसे तात्पर्य मिथ्यात्व आदि अट्ठाईस प्रकृतियोंके जघन्य द्रव्यसे है । उसका जघन्य और उत्कृष्ट जो काल हो उसे जानकर घटित कर लेना चाहिए यह बात इस चूर्णिसूत्रमें कही गई है ।

§ १३. इस प्रकार चूर्णिसूत्रके आश्रयसे कालका कथन करके अब यहाँ पर उच्चारणाचार्यके व्याख्यानके क्रमको कहेंगे । काल दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे मिथ्यात्व, आठ कषाय और सात नोकषायोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका कितना काल है ? जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल वर्षपृथक्त्वप्रमाण है और उत्कृष्ट अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है । इसी प्रकार अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अपेक्षा काल जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि इसकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल साधिक दो

एगस । अणुक्क० अणादिओ अपज्जवसिदो अण्णदिआ सपज्जवसिदा सादिआ सपज्ज० । तस्य ओ सो सादिओ सपज्जवसिदो तस्स इमा गिर सो-अण्णु० अंतो० । इत्थिपेद० एक पदे० अण्णुक्क० एगस० । अणुक्क० न० दसवत्तसइस्साभि वासपुपत्तेनम्महियाणि, एकक अर्चत्तकसमसंस्सज्जा पोग्गतापरियहा ।

१४ आदेसेण० गेरइएत्तु मिच्छप-सोखसक०-अण्णाक० एक० पद० अण्णुक्क० एगस । अणुक्क० अह० अंतो० । इदो ? सचमाए पुइवीए समपाहिय असंसे फइपमेत्तावसेसे माउए दम्भमुत्तस्स करिय विदियसमयमादिं काट्ठ अंतो मुहुत्तमेवकात्तं अणुक्कस्सदम्भेणच्छिय जिगयस्स तदुवत्तमादो । गेरइएपरिमसमए पदेसस्सुक्कस्ससापित्त पक्खिदमुत्तेण सह पदस्स वक्खानस्स कर्पं ण विरोहो ? विरोहो पेव । किं तु माउवर्चपयदाकालमि आदपदसवत्तयादो उवरिमक्कामपदेससंथमा बहुओ पि अइसइइरिओभएसो तण गेरइएपरिमसमए येव उक्कस्सपदेससापित्त । उव्वारणा इरियाणं पुण अहिप्पाएण उवरिमसंचपादो आउमर्चपक्कस्समि आदपदेसवत्तओ

इपासठ सताएमाय है । बार संज्जसन और पुइपवेइवी बत्तुए मदेराविमत्तिका जवन्व और बत्तुए कात्त एक समय है । अणुक्कउ मदेराविमत्तिका अनइवि अनन्त, अमादि-सात्त और सवि-सात्त कात्त है । वमसे आ सादि-सात्त कात्त है उसका यह निर्रेरा है । उसकी अपेक्षा जवन्व और बत्तुए कात्त अन्तर्मुहूर्त है । बीवेइवी बत्तुए मदेराविमत्तिका जवन्व और बत्तुए कात्त एक समय है । अनुत्तय मदेराविमत्तिका जवन्व कात्त अन्तर्मुहूर्त अर्थात् इस प्रकार वर्ष और बत्तुए अनन्त कात्त है आ अर्चत्तपाठ पुइगस परिवर्तनके बराबर है ।

विशेषार्थ—यहाँ उव्वारणाचार्यके व्याख्यानमें वही सब कात्त कहा गया है जो कि पूर्व-सूत्रों द्वारा निर्दिष्ट किया गया है । मात्र पूर्वसूत्रमें मिच्छात्त अर्थात् बी अणुक्कउ मदेराविमत्तिका जवन्व कात्त तीन प्रकार से बट्हाया गया है सा यहाँ अनन्त कात्त और अर्चत्तपाठ कात्तप्रमाण कात्त इन दो का जोड़कर एकका ही प्रत्यक्ष किया गया है, क्योंकि वत्त तीन प्रकारके कात्तोंमें से सबसे जवन्व कात्त वही प्राप्त होता है और यह निर्दिष्ट है ।

१४ आदेरासे नारकियोंमें मिच्छात्त सोसइ कपाय और इह मात्तपायोंकी बत्तुए मदेराविमत्तिका जवन्व और बत्तुए कात्त एक समय है । अणुक्कउ मदेराविमत्तिका जवन्व कात्त अन्तर्मुहूर्त है क्योंकि सात्तवीं पृथिवीमें आधुके एक समय अधिक अर्चत्तपाठ तर्पकमात्र शेष रहने पर वत्त कर्मोंके इत्यको बत्तुए करके और दूसरे समयसे लेकर अन्तर्मुहूर्त कात्त तक अणुक्कउ इत्यके साथ रहकर निकलनेवाले बीचके वत्त कात्त थावा जाता है ।

इच्छा—नारकीके अन्तिम समयमें मदेरासत्तर्पके बत्तुए त्थमित्तका कथन करनेवाले सूत्रके साथ इस व्याख्यानका विरोध कैसे नहीं प्राप्त होता ?

समाधान—वत्त सूत्रके साथ इस व्याख्यानका विरोध वा है ही किन्तु आधुवन्वके कात्त में जो मदेराका वत्त होता है उससे आगेके कात्तमें होनेवाला मदेराका वत्तव बहुत है वह वत्तवमात्रार्थक अफेरा है, इसलिए इस अफेराके अनुत्तर नारकीके अन्तिम समयमें ही उक्क मदेरावत्तिल प्राप्त होता है । परन्तु उव्वारणाचार्यके अतिप्रारम्भे आधुवन्व कात्तसे आगेके

हुओ ति तेण आउअवंधे चरिमसमयअपारद्धे चेव उक्कस्ससामित्तं होदि ति तदो
 माणाकणिट्ठदाए णिणयाभावादो त्थपं काऊण वक्खाणेयव्वं । उक्क० तेतीसं
 मागरोवमाणि । णवरि अणंताणु०चउक्क० जह० एगसमओ । कुदो ? चउवीससंत-
 कम्मियउवसमसम्मादिट्ठिम्मि सासणं गतूण अणंताणुबंधिसंतमुप्पाइय विदियसमए
 णिप्पिलिदम्मि तदुवलभादो । उक्क० त चेव । सम्मत-सम्मामि० उक्क० पदे०
 जहणुक्क० एगस० । अणुक्क० ज० एग०, उक्क० तेतीसं सागरोवमाणि । तिण्हं
 वेदाणसुक्क० पदेस० जहणुक्क० एगस० । अणुक्क० जह० दसवस्ससहस्साणि
 समयूणाणि, उक्क० तेतीसं सागरोवमाणि ।

कालमे होनेवाले सञ्चयसे आयुबन्धके कालमें प्रदेशोंका क्षय बहुत होता है इसलिए आयु बन्धके प्रारम्भ होनेके पूर्व अन्तिम समयमें ही अर्थात् आयुबन्ध प्रारम्भ होनेके अनन्तर पूर्व समयमें ही उत्कृष्ट स्वामित्व होता है । अतएव जिज्ञासाका निर्णय न होनेसे इस विषयको स्थगित करके व्याख्यान करना चाहिए ।

उक्त प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है । इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय है, क्योंकि चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो उपशमसम्यग्दृष्टि नारकी जीव सासादन गुणस्थानको प्राप्त होकर और अनन्तानुबन्धीचतुष्कके सत्त्वको उत्पन्न करके दूसरे समयमें अन्य गतिमें चला जाता है उसके एक समय काल पाया जाता है । तथा उत्कृष्ट काल वही है । अर्थात् तेतीस सागर ही है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है । तीनों वेदोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय कम दस हजार वर्ष है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है ।

विशेषार्थ—सामान्यसे नारकियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और ब्रह्म नोकषायोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति सातवें नरकमें आयुबन्धसे पूर्व अन्तिम समयमें होती है, इसलिए इसका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है तथा उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिके बाद नरकभवमें जो अन्तर्मुहूर्त काल शेष बचता है वह इन कर्मोंकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल है और इसका उत्कृष्ट काल सम्पूर्ण तेतीस सागर उस नारकीके होता है जिसके उस पर्यायमें उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति नहीं होती । यही कारण है कि उक्त कर्मोंकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर कहा है । मात्र अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय भी बन जाता है, इसलिए कारण सहित इस कालका निर्देश अलगसे किया है । यहाँ अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिके जघन्य कालका निर्देश करके 'उक्क० त चेव' कहकर उत्कृष्ट काल भी कह दिया है पर इससे यह मिथ्यात्व आदिकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिके उत्कृष्ट काल से अलग है ऐसा नहीं समझना चाहिए, अन्यथा 'त चेव' पद देनेकी कोई सार्थकता नहीं थी । सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति उत्कृष्ट स्वामित्वके अनुसार एक समयके लिए होती है, इसलिए इसका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है । तथा जो जीव अपनी-अपनी उद्वेलनाके अन्तिम

§ १५ पदमाए भाव दृष्टि पि मिच्छत्त-पारसक०-अनजोक० उच्छ० पदेस०
 नहण्णु० एगस । अणु० नह० पदमाए वसमस्ससहस्ताणि समज्जाणि । इदो
 समज्जाणं ? उप्पण्णपदमसमए पदेसस्स बाहुस्सस्सत्तवादो । सिसाए पुडबीए नह०
 समसगज्जण्णदिदीओ समज्जाणो, उच्छ० सगसगस्सस्सदिदीओ । एवमणंताणु०
 चउच्छ०-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं । अवरि अणु० न० एगस० । सत्तमीए गिरओपं ।
 अवरि इत्थि-पुरिस-गणंसयवेदानुसु० पदं नहण्णु० एग० । अणु० न०
 बावीसं सागरोवमाणि, उच्छ० तेतीसं साग० । अणंताणु० चउच्छ० उच्छ० पदे०
 नहण्णु० एग० । अणु० न० अंता० । इदो न एगसममो ? सत्तमाए पुडबीए
 सासज्जाणेण णिमामाभावादो । उच्छ० तेतीसं सागरो० ।

समयमें मरकमें उत्पन्न होता है पहले वहाँ इसकी अनुकूल प्रेरणामितिक एक समय तक बेची
 जाती है, अतः इन दोनों प्रवृत्तियोंकी अनुकूल प्रेरणामितिका अल्पकाल एक समय कहा है ।
 इसका उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है यह स्पष्ट ही है । तीनों बेहोकी वरुण प्रेरणामितिक मरकमें
 उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें सम्भव है, इसलिये इसका अल्पकाल और उत्कृष्ट काल एक समय
 कहा है । तथा मरककी अल्पकाल स्थितिमेंसे इस एक समयको कम कर देने पर तीनों बेहोकी
 अनुकूल प्रेरणामितिका अल्पकाल एक समय कम अल्पकाल अनुभवमात्र होता है और इसका
 उत्कृष्ट काल मरककी उत्कृष्ट अनुभवमात्र है यह स्पष्ट ही है ।

§ १५. पदमी पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तकके मारकियोंमें मिथ्यात्व बारह कपाल
 और नौ मरकपायोंकी उत्कृष्ट प्रेरणामितिका अल्पकाल और उत्कृष्ट काल एक समय है । अनुकूल
 प्रेरणामितिका अल्पकाल प्रथम पृथिवीमें एक समय कम इस हिसाब बर्ण है ।

टीका—एक समय कम क्यों है ?

समाधान—क्योंकि वहाँ उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें ही उत्कृष्ट उत्पन्न होता है ।

रोप पृथिवियोंमें उच्छ प्रवृत्तियोंकी अनुकूल प्रेरणामितिका अल्पकाल एक समय कम
 अपनी-आपनी अल्पकाल स्थितिप्रमाण है और उत्कृष्ट काल जहाँमें अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति-
 प्रमाण है । इसी प्रकार अनन्तानुबन्धीचतुष्क, सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यातवकी अपेक्षा काल
 प्राक्तन चाहिए । इसी विरोधता है कि इसकी अनुकूल प्रेरणामितिका अल्पकाल एक
 समय है । सातवीं पृथिवीमें सामान्य मारकियोंके सामान भाव है । इसी विरोधता है कि श्रीवेद,
 गुरुवर और अनुसङ्गवेदकी उत्कृष्ट प्रेरणामितिका अल्पकाल और उत्कृष्ट काल एक समय है ।
 तथा अनुकूल प्रेरणामितिका अल्पकाल बारस सागर है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर
 है । अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी उत्कृष्ट प्रेरणामितिका अल्पकाल और उत्कृष्ट काल एक समय है ।
 अनुकूल प्रेरणामितिका अल्पकाल अन्तर्मुहूर्त है ।

टीका—एक समय क्यों वही है ?

समाधान—क्योंकि सातवीं पृथिवीसे साप्ताहिक गुलस्थानके साथ निर्माण नहीं होता है ।
 तथा उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है ।

विशेषार्थ—अथमपि तद पृथिवियोंमें गुलिकमारकियोंसे आये हुए जीवके मरकमें

§ १६. तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु मिच्छन्त-सोलसक०-णवणो० उक्क० पदे० जहणुक्क० एगस० । अणुक्क० ज० खुद्दाभवग्गहणं । एटं समयूणं ति किं ण उच्चदे ? ण, णेरइयेहिंतो णिग्गयस्स अपज्जतएसु अणंतरसमए उववादाभावादो । अणंताणु० चउक्क०-इत्थिवेदाणमेगस० । सव्वासिमुक्क० अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्ठा । सम्मत्त-सम्मायि० उक्क० पदे० जहणुक्क० एग० । अणुक्क० ज० एग०, उक्क०

उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है, इसलिए इन नरकोंमें उक्त कर्मोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय कम जघन्य स्थितिप्रमाण और उत्कृष्ट काल उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण कहा है। मात्र इन नरकोंमें अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति सामान्य नारकियोंके समान भी सम्भव है, इसलिए इन नरकोंमें इसका जघन्य काल एक समय कहा है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति प्रथमादि छह नरकोंमें जो गुणितकर्मांशिक जीव आकर और वहाँ उत्पन्न होकर अन्तर्मुहूर्तमें यथाशास्त्र उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त करता है उसके अन्तिम समयमें होती है, अतः इसका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा इनकी उद्वेलनामें एक समय शेष रहने पर जो उक्त नरकोंमें उत्पन्न होता है उनके अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति एक समय देखी जाती है, अतः उक्त नरकोंमें इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय कहा है और इसका उत्कृष्ट काल उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है। सातवीं पृथिवीमें अन्य सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल सामान्य नारकियोंमें जिस प्रकार घटित करके बतला आये हैं उस प्रकारसे घटित कर लेना चाहिए। मात्र जिन प्रकृतियोंमें कुछ विशेषता है उसका स्पष्टीकरण करते हैं। तीनों वेदोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति तो गुणितकर्मांशिक जीवके यहाँ उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें ही होती है, इसलिए इसका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा इस एक समयको सातवें नरकी जघन्य स्थितिमेंसे कम कर देनेपर यहाँ उनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल पूरा वाईस सागर प्राप्त होता है और इसका उत्कृष्ट काल यहाँकी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है। यहाँ अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका स्वामित्व ओघके समान है, इसलिए इनकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल पूरा तेतीस सागर कहा है। यहाँ अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति का जघन्य काल एक समय क्यों नहीं बनता इसके कारणका निर्देश मूलमें ही किया है।

§ १६ तिर्यश्चगतिये तिर्यश्चोमे मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल क्षुल्लक भवग्रहणप्रमाण है।

शंका—इसे एक समय कम क्यों नहीं कहते ?

समाधान—नहीं, क्योंकि नारकियोंमेंसे निकले हुए जीवका अनन्तर समयमें अपर्याप्तक जीवों में उद्गाद नहीं होता।

अनन्तानुबन्धीचतुष्क और स्त्रीवेदकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और सबका उत्कृष्ट काल अनन्त काल है जा असंख्यात पुद्गल परिवर्तनके बराबर है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है।

विष्णि पत्तिदोषमाणि पत्तिदोषमस्त असं० मागेण सादिरे० ।

१७ पंचिदियतिरिक्लतिपम्मि इत्थीसं पयवीणमुक्क० पदे० अण्णुक्क० पगस० । अण्णुक्क० अ० सुद्धा० अंतामु०, अण्णुक्क० अण्णुक्क० इत्थिपदाणमेगस०, सक्क० सम्मासिं विष्णि पत्तिदोषमाणि पुप्फकोटिपुपणेगम्पहियाणि । सम्मास-सम्मा-मिक्कदाणमिस्सिदेदं गो ।

अनुकृष्ट प्रदेशविमर्शिका अथन्य कास एक समय है और एकल कास पस्यका असंख्यातवर्ग मात्र अधिक तीन पस्य प्रमाण है ।

विशेषार्थ—यहाँ सब कर्मोंकी एकल प्रदेशविमर्शिका अपने अपने स्थिति के अनुसार एक समयके लिए होती है, इसलिये इसका अथन्य और एकल कास एक समय कहा है । आगेकी मर्त्यवाच्यमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए, इसलिये आगे सब कर्मोंकी मात्र अनुकृष्ट प्रदेशविमर्शिका कासका स्पष्टीकरण करेंगे । विष्णोमें अथन्य आमु सुस्तक मयमह्यप्रमाण है और कायस्थिति अन्तक कास प्रमाण है । इसलिये इनमें जन्मीस प्रकृतियोंकी अनुकृष्ट प्रदेशविमर्शिका अथन्य कास सुस्तक मयमह्यप्रमाण और एकल अन्तक कास कहा है । मात्र यहाँ अन्तकानुबन्धीचतुष्क और क्षीरेदकी अनुकृष्ट प्रदेशविमर्शिका अथन्य कास एक समय भी बन जाता है । इसलिये इसका अलगसे निर्देश किया है । या क्षीरेदकी एकल प्रदेशविमर्शिका करनेके बाद एक समय तक विष्णोमें रहकर देव हो जाता है उसके क्षीरेदकी अनुकृष्ट प्रदेशविमर्शिका अथन्य कास एक समय बन जाता है और जिस विष्णोके अन्तकानुबन्धीचतुष्ककी विर्यवोजना करके विष्णो पर्यायमें रहनेका कास एक समय रोप रहने पर सासाधनुस्थान प्राप्त करके उससे संयुक्त हुआ है उसके अन्तकानुबन्धीचतुष्ककी अनुकृष्ट प्रदेशविमर्शिका अथन्य कास एक समय बन जाता है । विष्णोमें सम्मत्त्व और सम्मत्त्वप्रत्यक्षकी अनुकृष्ट प्रदेशविमर्शिका अथन्य कास एक समय ब्रह्ममाकी अपेक्षा बन जाता है, इसलिये इसका अथन्य कास एक समय कहा है । सम्मत्त्वकी अनुकृष्ट प्रदेशविमर्शिका अथन्य कास एक समय अनुकृष्टक सम्मत्त्वकी अपेक्षा भी बन जाता है इतना यहाँ विशेष जानना चाहिए । तथा जो विष्णो पस्यक असंख्यातवर्ग मागप्रमाण कास तक इनकी ब्रह्मता करते हुए अन्तम तीन पस्यकी आमुके माथ अन्तम मागमूमिमें उत्पन्न होते हैं और यहाँ अधिकतर समय तक सम्मत्त्वक साथ रहते हुए इनकी सत्ता बलवत् रहते हैं उनके इस सब कासक भीतर एक होनों प्रकृतियोंकी सत्ता बनी रहती है, इसलिये इनकी अनुकृष्ट प्रदेशविमर्शिका एकल कास पस्यक असंख्यातवर्ग माग अधिक तीन पस्य कहा है ।

§ १७ पञ्चनिष्ठ विष्णोके जन्मीस प्रकृतियोंकी अनुकृष्ट प्रदेशविमर्शिका अथन्य और एकल कास एक समय है । अनुकृष्ट प्रदेशविमर्शिका अथन्य कास विष्णोमें सुस्तक मयमह्यप्रमाण और रोप वा में अन्तर्गुह्य है । किन्तु अन्तकानुबन्धीचतुष्क और क्षीरेदकी अनुकृष्ट प्रदेशविमर्शिका अथन्य कास एक समय है और सबका एकल कास पूर्वोक्ते पृथक्त्व अधिक तीन पस्य है । सम्मत्त्व और सम्मत्त्वप्रत्यक्षका मात्र क्षीरेदक समाप्त है ।

विशेषार्थ—पञ्चनिष्ठ विष्णोकी अथन्य स्थिति सुस्तक मयमह्यप्रमाण और रोप वा की अन्तर्गुह्य है । तथा सबकी कायस्थिति पूर्वोक्तेप्रत्यक्ष अधिक तीन पस्य है । इसलिये इनमें जन्मीस प्रकृतियोंकी अनुकृष्ट प्रदेशविमर्शिका अथन्य कास कमसे सुस्तक मयमह्यप्र-

§ १८. पंचि०तिरि०अपज्ज० छ्वीसं पयडीणं उक्क० पदे० जहणुक्क० एगस० ।
अणुक्क० ज० खुद्धाभव० समज्जणं, उक्क० अंतो० । सम्मत-सम्मापिच्छताणमेवं चेव ।
णवरि अणुक्क० ज० एगस० । एवं मणुसअपज्जत्ताणं ।

§ १९. मणुसतियम्मि अट्ठावीसं पयडीणं उक्क० पदे० जहणुक्क० एगस० ।
अणुक्क० ज० खुद्धा० अंतो० समज्जणं, उक्क० सगट्ठिदी । णवरि सम्म०-सम्मामि०-
अणंताणु०चउक्क०-इत्थिवेद० अणुक्क० ज० एगस० । चटुसंज०-पुरिस० अणुक्क०
ज० अंतोमु० ।

प्रमाण और अन्तर्मुहूर्त कहा है तथा उत्कृष्ट काल पूर्व कोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्य कहा है ।
मात्र अनन्तानुबन्धीचतुष्क और स्त्रीवेदकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति सामान्य तिर्यश्चोंके समान
यहाँ भी बन जाती है, इसलिए यहाँ इसका जघन्य काल एक समय कहा है । सम्यक्त्व और
सम्यग्मिथ्यात्वकी प्ररूपणा स्त्रीवेदके समान घटित हो जाती है, इसलिए उसे उसकी प्ररूपणाके
समान जानने की सूचना की है ।

§ १८. पञ्चेन्द्रिय तिर्यश्च अपर्याप्तकोमें छ्वीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका
जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय कम
क्षुल्लक भवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका
भङ्ग इसी प्रकार है । इतनी विशेषता है कि इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक
समय है । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तक जीवोंमें जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका एक समय काल कम कर देने पर यहाँ अनुत्कृष्ट
प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल प्राप्त होता है और पञ्चेन्द्रिय तिर्यश्च अपर्याप्तकोंकी कायस्थिति
अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है, इसलिए इन जीवोंमें छ्वीस प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य
काल एक समय कम क्षुल्लक भवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण कहा है ।
सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका अन्य सब काल इसी प्रकार बन जाता है, इसलिए उसे
इसी प्रकार जानने की सूचना की है । मात्र इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका उद्देलना की अपेक्षा
एक समय काल भी प्राप्त होता है, इसलिए इनकी उक्त विभक्तिका जघन्य काल अलगसे एक
समय कहा है । मनुष्य अपर्याप्तकोंमें यह कालप्ररूपणा अविकल बन जाती है, इसलिए उनमें
पञ्चेन्द्रिय तिर्यश्च अपर्याप्तकोंके समान जाननेकी सूचना की है ।

§ १९ मनुष्यत्रिकमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट
काल एक समय है । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय कम क्षुल्लक
भवग्रहणप्रमाण है और एक समय कम अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है और उत्कृष्ट काल अपनी कायस्थिति-
प्रमाण है । इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क और
स्त्रीवेदकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय है । तथा चार सञ्चलन और
पुरुषवेदकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है ।

विशेषार्थ—सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका एक समय काल अपनी अपनी
जघन्य स्थितिमेंसे कम कर देने पर अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल प्राप्त होता है, इसलिए
यहाँ पर अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल सामान्य मनुष्योंमें एक समय कम क्षुल्लक भव
ग्रहणप्रमाण और शेष दो प्रकारके मनुष्योंमें एक समय कम अन्तर्मुहूर्तप्रमाण कहा है । इनमें

§ २० देवगदीए देवेसु मिच्छ०-बारसक०-सत्तयोक०-उक० पदे० जहणुक्क०-एग० । मणुक्क० जह० दसवत्ससहस्साणि समसणाणि, उक० तेतीसं सागरो० । एषं सम्मत्त-सम्मायि० अर्णत्ताणु०-वसकाणं । जवरि मणुक्क० ज० एगस०, उक० त पेय । एषं पुरिस-जईसपवेदाणं । जवरि मणुक्क० ज० दसवत्ससहस्साणि, उक० तेतीसं सामरोवमाभि ।

§ २१ भयन०-माण०-आइसि० जम्बीसं पयडीणमुक्क० पदे० जहणुक्क०

इसका जहणुक्क काज कायस्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है । मात्र इसमें सम्मत्तका उल्लेख और जपसाकी अपेक्षा तथा सम्मत्तमिच्छात्वका उल्लेखकी अपेक्षा अनन्तानुबन्धीचतुष्कका संयोजना होकर सासादन गुणस्थानके साथ विवक्षित पर्यायमें एक समय रहनेकी अपेक्षा और कीचिदका जहणुक्क प्रवेशविमर्शिके बाव एक समय तक अनुकूल प्रवेशविमर्शिके साथ विवक्षित पर्यायमें रहनेकी अपेक्षा एक प्रवृत्तियोंकी अनुकूल प्रवेशविमर्शिका अपन्य काल एक समय बन जाने से यह एक प्रमाण कहा है । तथा चार संवत्सर और पुरुषवर्षकी अनुकूल प्रवेशविमर्शिका अपन्य काल अन्तर्मुहूर्त आ आपसे घटित करके बतला जाये हैं यह मनुष्यवर्षमें सम्भव है इसलिये इनमें एक प्रवृत्तियोंकी अनुकूल प्रवेशविमर्शिका अपन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा है ।

§ २ देवगदिमें देवोंमें मिच्छात्व बारह कपाय और सात लोकपायोंकी जहणुक्क प्रवेशविमर्शिका अपन्य और जहणुक्क काज एक समय है । अनुकूल प्रवेशविमर्शिका अपन्य काल एक समय कम इस हजार वर्ष है और जहणुक्क काज तृतीस सागर है । इसी प्रकार सम्मत्त सम्मत्तमिच्छात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अपेक्षा काज आनन्त चाहिए । इसी विशेषता है कि इनकी अनुकूल प्रवेशविमर्शिका अपन्य काल एक समय है और जहणुक्क काज बड़ी है । पुरुषवर्ष और मनुष्यवर्षका काल भी इसी प्रकार आनन्त चाहिए । इसी विशेषता है कि इनकी अनुकूल प्रवेशविमर्शिका अपन्य काल इस हजार वर्ष है और जहणुक्क काज तेतीस सागर है ।

विशेषार्थ—देवोंमें मिच्छात्व बारह कपाय और सात लोकपायोंकी जहणुक्क प्रवेशविमर्शिका गुणस्थिति कमारिक्त जीवक यहाँ उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें होती है, इसलिये यहाँ इस प्रवृत्तियोंकी अनुकूल प्रवेशविमर्शिका अपन्य काल एक समय कम इस हजार वर्ष कहा है । जहणुक्क काज तृतीस सागर है यह स्पष्ट ही है । दोष प्रवृत्तियोंकी अनुकूल प्रवेशविमर्शिका जहणुक्क काज वा बड़ी है । मात्र अपन्य कालमें अन्तर है । सम्मत्तका उल्लेख और जपसाकी अपेक्षा सम्मत्तमिच्छात्वका उल्लेखकी अपेक्षा और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका संयोजना होकर सासादन गुणस्थानके साथ एक समय विवक्षित पर्यायमें रहनेकी अपेक्षा एक समय काल बन जाता है इसलिये यहाँ इनकी अनुकूल प्रवेशविमर्शिका अपन्य काल एक समय कहा है । तथा पुरुषवर्षकी जहणुक्क प्रवेशविमर्शिका पस्योपमकी स्थितिजाले देवोंके अन्तिम समयमें होती है, इससे कम विविधसेके मर्त्य इसलिये या इसकी अनुकूल प्रवेशविमर्शिका अपन्य काल पूरा इस हजार वर्ष कहा है और मनुष्यवर्षकी जहणुक्क प्रवेशविमर्शिका पराग्न कस्यमें होती है, इसलिये इसकी अनुकूल प्रवेशविमर्शिका भी अपन्य काल पूरा इस हजार वर्ष कहा है ।

§ २१ भयनवासी अन्तर और अ्याकिपी देवोंमें जम्बीस प्रवृत्तियोंकी जहणुक्क

एगस० । अणुक० जह० जहण्णट्ठिदी समऊणा, उक्क० अप्पप्पणो उक्कस्सट्ठिदीओ ।
णवरि अणंताणु०चउक्क० जह० एगस० । सम्मत-सम्मामिच्छत्ताणमणंताणु०-
चउक्क०भंगो ।

§ २२. सोहम्मादि जाव सहस्सारो त्ति मिच्छत्त-वारसक०-णवणोक० उक्क०
पदे० जहण्णुक० एगस० । अणुक० जह० सग-सगजहण्णट्ठिदीओ समऊणाओ, उक्क०
सग-सगुक्कस्सट्ठिदीओ । अणंताणु०चउक्क०-सम्मत-सम्मामिच्छत्ताणं एवं चेव । णवरि
अणुक० जह० एगस०, उक्क० तं चेव ।

§ २३. आणदादि जाव णवगेवेज्जा त्ति छ्वीस पयडीण उक्क० पदे०

प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल
एक समय कम जघन्य स्थितिप्रमाण है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है ।
इतनी विशेषता है कि अनन्तानुवन्धीचतुष्ककी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय
है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भङ्ग अनन्तानुवन्धीचतुष्कके समान है ।

विशेषार्थ—उक्त देवोंमें उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें सम्भव है,
इसलिए इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय कम अपनी अपनी जघन्य
स्थितिप्रमाण कहा है और उत्कृष्ट काल उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है । मात्र अनन्तानु-
वन्धीचतुष्ककी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय सामान्य देवोंके समान यहाँ
भी बन जाता है, इसलिए इसके जघन्य काल एक समयका अलगसे निर्देश किया है ।
सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भङ्ग अनन्तानुवन्धीचतुष्कके समान कहनेका कारण यह है
कि यहाँ पर इनका भी उद्वेलनाकी अपेक्षा अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय
बन जाता है । शेष कथन स्पष्ट ही है ।

§ २२ सौधर्म कल्पसे लेकर सहस्त्रार कल्प तकके देवोंमें मिथ्यात्व बारह कपाय और
नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अनुत्कृष्ट
प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय कम अपनी अपनी जघन्य स्थितिप्रमाण है और
उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । अनन्तानुवन्धीचतुष्क, सम्यक्त्व और
सम्यग्मिथ्यात्वका भङ्ग इसी प्रकार है । इतनी विशेषता है कि इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका
जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल वही है ।

विशेषार्थ—यहाँ प्रारम्भमें कही गई चारहस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति
उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें होती है । मात्र सौधर्म और ऐशान कल्पमें पुरुषवेद और
नपुसकवेदकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति उस पर्यायके अन्तिम समयमें होती है, इसलिए इन
सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय कम अपनी अपनी जघन्य
स्थितिप्रमाण कहा है । तथा शेष प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति सामान्य देवोंके समान
यहाँ भी घटित हो जाती है, इसलिए इसका जघन्य काल एक समय कहा है । यहाँ सब
प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है यह
स्पष्ट ही है ।

§ २३ आन्त कल्पसे लेकर नौ त्रैवेयक तकके देवोंमें छव्वीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट

महण्णुक्क० एगस० । अणुक्क० मइ० सुहाबेपपाडो समउणो, उक्क० सगहिदी ।
णवरि मण्णवाणु चउक्कस अणुक्क० पदं० मइ० एगस० । एव सम्मत-सम्मा
मिच्छवाणं ।

§ २४ अनुविसादि नाव सन्वहसिद्धि ति सत्तावीसं पयडीणमुक्क० पदे०
महण्णुक्क एगस अणुक्क० मइ० महण्णमहिदी समयूणा, उक्क० सगहस्सहिदी ।
णवरि मण्णवाणु चउक्क० अणुक्क० मइ० अंतोमु० । सम्मत० उक्क० पदेसमहण्णुक्क०
एगस० । अणुक्क० मइ० एगस०, उक्क० सगहिदी । एवं पेदम्बं नाव अभाहारि ति ।

प्रदेशविमर्शिका अपत्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अनुकूल प्रदेशविमर्शिका अपत्य काल
मुस्तककल्पक पाठके अनुसार एक समय कम अपत्य स्थितिप्रमाण है और उत्कृष्ट काल अपनी
अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । इतनी विरोधता है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अनुकूल
प्रदेशविमर्शिका अपत्य काल एक समय है । इसी प्रकार सम्पत्त और सम्पत्तिध्यातकी
अपेक्षासे जानना चाहिए ।

विरोधार्थ—यहाँ मिथ्यात्व, सोझ कपल और लह न्यकपाबोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविमर्शिका
अपने अपने मन्त्रे प्रथम समयमें सम्मेल है । तीनों वेदोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविमर्शिका स्वमित्तके
अनुसार पचापि मन्त्रे प्रथम समयमें सम्मेल नहीं है, क्योंकि स्वमित्तप्रमाणमें शुद्धि-
कमीरविधिसे आकर या इत्यन्तिगके साथ मरकर और यहाँ उत्पन्न होकर मिश्रित वेदके
परलक्षणके अन्तिम समयमें स्थित है उसके तीनों वेदोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविमर्शिका कल्लाई है पर
मुस्तककल्पके पाठके अनुसार तीनों वेदों सहित उक्त सब प्रकृतियोंकी अनुकूल प्रदेशविमर्शिका
अपत्य काल एक समय कम अपनी अपनी अपत्य स्थितिप्रमाण बतलाना है जो विचार कर
पटित कर लेना चाहिए । मात्र अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अनुकूल प्रदेशविमर्शिका अपत्य काल
एक समय सामान्य वेदोंके समान यहाँ भी बन जाता है, इसलिये वह उक्त प्रमाण कहा है ।
तथा यहाँ सम्पत्त और सम्पत्तिध्यातकी अनुकूल प्रदेशविमर्शिका अपत्य काल एक समय
ही है क्योंकि सम्पत्तकाल बोलना और उपलब्धी अपेक्षा तथा सम्पत्तिध्यातका खोसबाकी
अपेक्षा एक समय काल प्राप्त होनेमें कोई बाधा नहीं आती । इसलिये इनकी प्रकृत्या अनन्तानु-
बन्धीचतुष्कके समान जाननेकी सूचना की है । यहाँ सब प्रकृतियोंकी अनुकूल प्रदेशविमर्शिका
उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है ।

§ २५ अनुविसासे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके वेदोंमें उत्कर्षस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट
प्रदेशविमर्शिका अपत्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अनुकूल प्रदेशविमर्शिका अपत्य
काल एक समय कम अपत्य स्थितिप्रमाण है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति-
प्रमाण है । इतनी विरोधता है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अनुकूल प्रदेशविमर्शिका अपत्य
काल अन्तमुहूर्त है । सम्पत्तकी उत्कृष्ट प्रदेशविमर्शिका अपत्य और उत्कृष्ट काल एक समय
है । अनुकूल प्रदेशविमर्शिका अपत्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी
उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । इसी प्रकार अभाहारक मार्गका वह स जाना चाहिए ।

विशेष—उत्कृष्ट प्रदेशविमर्शिके एक समयका अपनी अपनी अपत्य स्थितिमें कम
कर देने पर उत्कर्षस प्रकृतियोंकी अनुकूल प्रदेशविमर्शिका अपत्य काल प्राप्त होता है । इसलिये
वह एक समय कम अपत्य स्थितिप्रमाण कहा है । मात्र या वचनसम्बन्धि अनन्तानुबन्धीकी

§ २५. जहणणए पयदं । दुविहो णिदेसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण पिच्छत्त-एक्कारसकसाय-णवणोकसाय० जहणणपदे जहण्णुक्स्सेण एगसमओ । अजहण्णे० अणादिओ अपज्जवसिदो अणादिओ सपज्जवसिदो । सम्मत्त-सम्मामिच्छताणं जहणणपदे जहण्णुक्क० एगसमओ । अजह० ज० अंतोमु०, उक्क० वेळावट्टि सागरोवमाणि सदरेयाणि । अणंताणु० चउक्क० ज० पदेस० जहण्णुक्क० एगस० । अज० अणादिओ अपज्जवसिदो अणादिओ सपज्जवसिदो सादिओ सपज्जवसिदो । जो सादिओ सपज्जवसिदो तस्स इमो णिदेसो—जह० अंतोमु०, उक्क० अद्धपोगलपरियट्ठं देसूणं । लोभसंजल० जह० पदे० जहण्णुक्क० एगस० । अज० तिण्णि भंगा । जो सादिओ सपज्जवसिदो तस्स जहण्णुक्क० अंतोमुहुत्तं ।

विसंयोजना किये बिना वहाँ उत्पन्न हुआ है और अन्तर्मुहूर्त कालमें उनकी विसंयोजना कर देता है उसके इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति अन्तर्मुहूर्त काल तक ही देखी जाती है, इसलिए इसका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा है । क्षणकी अपेक्षा सम्यक्त्वकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय यहाँ भी सम्भव होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है । इन सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है । इस प्रकार यहाँ तक ओघसे और चारों गतियोंमें कालका विचार किया । आगे अपनी अपनी विशेषताको जानकर वह धटित कर लेना चाहिए ।

इस प्रकार उत्कृष्ट काल समाप्त हुआ ।

§ २५. जघन्यका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे मिथ्यात्व, ग्यारह कपाय और नौ नोकपायोंकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिका अनादि-अनन्त और अनादि-सान्त काल है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल साधिक दो छप्पासठ सागर है । अनन्तानुबन्धीचतुष्पकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिका अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त काल है । उनमें जो सादि-सान्त काल है उसका यह निर्देश है—जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण है । लोभसंज्वलनकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिके तीन भङ्ग हैं । उनमें जो सादि-सान्त भङ्ग है उसका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

विशेषार्थ—अपने अपने स्वामित्वके अनुसार ओघ और आदेशसे सब प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्ति एक समय तक ही होती है, इसलिए उसका जघन्य और उत्कृष्ट काल सर्वत्र एक समय कहा है । अतः यहाँ केवल सब प्रकृतियोंकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिके कालका विचार करेंगे । मिथ्यात्व आदि इक्कीस प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्ति अपनी अपनी क्षणके अन्तिम समयमें होती है, इसलिए इसका काल अभव्यों या अभव्योंके समान भव्योंकी अपेक्षा

महण्युक्त० एगस० । मज्जुक्त० मह० सुरावपपादो समउणो, उक्त० समहिदी ।
गवरि मणवाणु पठहस्त मज्जुक्त० पद० मह० एगस० । एव सम्मत-सम्मा
मिच्छत्तार्थ ।

§ २४ अजुहिसादि आब सम्महसिद्धि पि सत्तावीसं पयडीणमुक्त० पदे०
महण्युक्त० एगस० मज्जुक्त० मह० महण्यहिदी समयूणा, उक्त० सणुक्तसहिदी ।
गवरि मणवाणु० पठहस्त० मज्जुक्त० मह० अंतोमु० । सम्मच० उक्त० पदसमहण्युक्त०
एगस० । मज्जुक्त० मह० एगस०, उक्त० सगहिदी । एवं नेद्वर्म्म आब अज्जाहारि सि ।

प्रदेशविमर्शिका अथर्व्य और उक्त काल एक समय है । अनुक्त प्रदेशविमर्शिका अथर्व्य काल
सुस्तककम्पके पाठके अनुसार एक समय कम अथर्व्य स्थितिप्रमाण है और उक्त काल अपनी
अपनी उक्त स्थितिप्रमाण है । इतनी विरोधता है कि अन्तर्गतानुवन्धीचतुष्ककी अनुक्त
प्रदेशविमर्शिका अथर्व्य काल एक समय है । इसी प्रकार सम्मत्त्व और सम्ममिध्यात्वकी
अवेक्षा ज्ञानमा आहिय ।

विरोधार्थ—यहाँ मिध्यात्व, सोलह कपाय और जह नरुपायोंकी उक्त प्रदेशविमर्श
अपने अपने यवके प्रथम समयमें सम्मत्त्व है । तीनों वेदोंकी उक्त प्रदेशविमर्श स्वमित्वके
अनुसार पचापि मक्क प्रथम समयमें सम्मत्त्व नहीं है, क्योंकि स्वमित्वप्ररूपकामें गुणित-
कर्मादिभिधिते आकर जो इत्यसिगके साव मरकर और यहाँ उत्पन्न होकर विवक्षित वेदके
परशकालके अन्तिम समयमें स्थित है इसके तीनों वेदोंकी उक्त प्रदेशविमर्श वतवार्थ है पर
सुस्तककम्पके पाठके अनुसार तीनों वेदों सहित उक्त सब प्रकृतियोंकी अनुक्त प्रदेशविमर्शिका
अथर्व्य काल एक समय कम अपनी अपनी अथर्व्य स्थितिप्रमाण वतवार्थ है सा विचार कर
बटित कर सेवा आहिय । मात्र अन्तर्गतानुवन्धीचतुष्ककी अनुक्त प्रदेशविमर्शिका अथर्व्य काल
एक समय सामान्य वेदोंके समान यहाँ भी बन जाता है, इसलिये यह उक्त प्रमाण कहा है ।
तथा यहाँ सम्मत्त्व और सम्ममिध्यात्वकी अनुक्त प्रदेशविमर्शिका अथर्व्य काल एक समय
ही है, क्योंकि सम्मत्त्वका उद्देशना और उपायकी अवेक्षा तथा सम्ममिध्यात्वका सोलहाकी
अवेक्षा एक समय कम प्राप्त होनेमें कोई बाधा नहीं आती इसलिये इनकी प्रकृत्या अन्तर्गतानु-
वन्धीचतुष्कके समान ज्ञाननेकी सूचना की है । यहाँ सब प्रकृतियोंकी अनुक्त प्रदेशविमर्शिका
उक्त काल अपनी अपनी उक्त स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है ।

§ २५ अजुहिसासे लेकर सर्वाभिधित उक्त वेदोंमें सत्तावीस प्रकृतियोंकी उक्त
प्रदेशविमर्शिका अथर्व्य और उक्त काल एक समय है । अनुक्त प्रदेशविमर्शिका अथर्व्य
काल एक समय कम अथर्व्य स्थितिप्रमाण है और उक्त काल अपनी अपनी उक्त स्थिति-
प्रमाण है । इतनी विरोधता है कि अन्तर्गतानुवन्धीचतुष्ककी अनुक्त प्रदेशविमर्शिका अथर्व्य
काल अन्तर्गतार्थ है । सम्मत्त्वकी उक्त प्रदेशविमर्शिका अथर्व्य और उक्त काल एक समय
है । अनुक्त प्रदेशविमर्शिका अथर्व्य काल एक समय है और उक्त काल अपनी अपनी
उक्त स्थितिप्रमाण है । इसी प्रकार अन्तर्गतक मागेवा उक्त ज्ञान आहिय ।

विरोधार्थ—उक्त प्रदेशविमर्शिका एक समयका अपनी अपनी अथर्व्य स्थितिप्रमाण कम
कर देने पर सत्तावीस प्रकृतियोंकी अनुक्त प्रदेशविमर्शिका अथर्व्य काल प्राप्त होता है, इसलिये
यह एक समय कम अथर्व्य स्थितिप्रमाण कहा है । मात्र जो वेदकसम्पत्ति अन्तर्गतानुवन्धीकी

§ २५. जहण्णए पयदं । दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मिच्छत्त-एकारसकसाय-णवणोकसाय० जहण्णपदे जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ । अजहण्णे० अणादिओ अपज्जवसिदो अणादिओ सपज्जवसिदो । सम्मत-सम्माभिच्छत्ताणं जहण्णपदे जहण्णुक्क० एगसमओ । अजह० ज० अंतोमु०, उक्क० वेळावट्ठि सागरोवमाणि सदारेयाणि । अणंताणु०चउक्क० ज० पदेस० जहण्णुक्क० एगस० । अज० अणादिओ अपज्जवसिदो अणादिओ सपज्जवसिदो सादिओ सपज्जवसिदो । जो सादिओ सपज्जवसिदो तस्स इमो णिहेसो—जह० अंतोमु०, उक्क० अद्धपोगलपरियट्ठं देसूणं । लोभसंजल० जह० पदे० जहण्णुक्क० एगस० । अज० तिण्णि भंगा । जो सादिओ सपज्जवसिदो तस्स जहण्णुक्क० अंतोमुहुत्तं ।

विसंयोजना किये बिना वहाँ उत्पन्न हुआ है और अन्तर्मुहूर्त कालमें उनकी विसंयोजना कर देता है उसके इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति अन्तर्मुहूर्त काल तक ही देखी जाती है, इसलिए इसका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा है । क्षणकी अपेक्षा सम्यक्त्वकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय यहाँ भी सम्भव होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है । इन सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है । इस प्रकार यहाँ तक ओघसे और चारो गतियोंमें कालका विचार किया । आगे अपनी अपनी विशेषताको जानकर वह बटित कर लेना चाहिए ।

इस प्रकार उत्कृष्ट काल समाप्त हुआ ।

§ २५. जघन्यका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे मिथ्यात्व, ग्यारह कपाय और नौ नोकपायोंकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिका अनादि-अनन्त और अनादि-सान्त काल है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल साधिक दो छायासठ सागर है । अनन्तानुवन्धीचतुष्ककी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिका अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त काल है । उनमें जो सादि-सान्त काल है उसका यह निर्देश है—जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण है । लोभसज्वलनकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिके तीन भङ्ग हैं । उनमें जो सादि-सान्त भङ्ग है उसका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

विशेषार्थ—अपने अपने स्वामित्वके अनुसार ओघ और आदेशसे सब प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्ति एक समय तक ही होती है, इसलिए उसका जघन्य और उत्कृष्ट काल सर्वत्र एक समय कहा है । अतः यहाँ केवल सब प्रकृतियोंकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिके कालका विचार करेंगे । मिथ्यात्व आदि इक्कीस प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्ति अपनी अपनी क्षणके अन्तिम समयमें होती है, इसलिए इसका काल अभव्यों या अभव्योंके समान भव्योंकी अपेक्षा

॥ २६ ॥ आदसेण भेरइपसु मिच्छत्त-सत्तणोकसाय० बह० पदे० बहण्णुक्क० एग-
सममो । भज० बह० अंतासु०, चक्क० सेवीसं सामरोवमाणि । सम्मत्त-सम्मापि०
अंमंताणु० चक्काणं बह० पद० बहण्णुक्क० एगस० । भज० बह० एगसममो, चक्क०
सेवीसं सागरो० । बारसक्क०-मय-सुगुंआणं बह० पदे० बहण्णुक्क० एगस० । भज०
ब० दसवस्ससइस्साणि समयुणाणि, चक्क० सेवीसं सागरोवमाणि ।

अनादि-अनन्त और इतर मध्योंकी अपेक्षा अनादि-सान्त क्या है । सम्मत्त और सम्मपिप्प्यात्त
य छेलेना प्रवृत्तिर्षी हैं । इसका सत्त्व होकर कपया द्राघ कमसे कम अन्तमुहूर्तमें अमय हो
सकता है और वा मारम्भमें, मध्यमें और अन्तमें इसकी छेलेना करते हुए दो द्वापार सगर
बाल तक सम्मत्तके साथ रहता है उसके साधिक दो द्वापार सगर बाल तक इनका सत्त्व वेद्य
जाता है, इसलिए इनकी अजपम्य प्रदेशविम्विच्छिन्न जपम्य बाल अन्तमुहूर्त और छट्ट बाल
साधिक दो द्वापार सगर क्या है । इनका सत्त्व अनादि-अनन्त और अनादि-सान्त नहीं होय,
इसलिए य दो मज नहीं बने हैं । अन्तानुबन्धीपुण्य अनादि रुपावासी होकर भी विस्तृतोचना
प्रवृत्तिर्षी हैं, इसलिए इनके अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त ये तीन मज बने
हैं । तथा सादि-सान्तके बाह्य निदेश करते हुए यह जपम्य अन्तमुहूर्त क्या है, क्योंकि विस्-
याज्याके बाद अन्तमुहूर्तके लिए इसकी रुपा होकर पुन विस्तृतोचना हो सकती है । तथा
छट्ट बाल इस कम अर्धपुष्टासमया क्या है, क्योंकि कोई जीव इस बालके मारम्भमें और
अन्तमें इनकी विस्तृतोचना करे और मध्यमें न करे यह सम्भव है । सोमकी अजपम्य प्रदेश-
विम्विच्छिन्न भी तीन मज हैं । अनादि-अनन्त मज अमयोंकी होता है । अनादि-सान्त मज
मध्यके जपम्य प्रदेशविम्विच्छिन्न पूर्ण होता है और सादि-सान्त मज जपम्य प्रदेशविम्विच्छिन्न बाह्यमें
होता है । इसकी जपम्य प्रदेशविम्विच्छिन्न जपम्य बीजके अथाकरणके अन्तिम समकमें होती है ।
इसके बाद इसका सत्त्व अन्तमुहूर्त बाल तक ही पाया जाता है, इसलिए इसका जपम्य और छट्ट
बाल अन्तमुहूर्त क्या है ।

॥ २६ ॥ आदसेण नाटिक्कामे मिप्प्यात्त बार सत्त नोकयावोकी जपम्य प्रदेशविम्विच्छिन्न
जपम्य और छट्ट बाल एक समय है । अजपम्य प्रदेशविम्विच्छिन्न जपम्य बाल अन्तमुहूर्त है
बार छट्ट बाल तनीस सागर है । सम्मत्त, सम्मपिप्प्यात्त और अन्तानुबन्धीपुण्यकी
जपम्य प्रदेशविम्विच्छिन्न जपम्य और छट्ट बाल एक समय है । अजपम्य प्रदेशविम्विच्छिन्न
जपम्य बाल एक समय है और छट्ट बाल तनीस सागर है । बार कपय, मय और जुगुप्सकी
जपम्य प्रदेशविम्विच्छिन्न जपम्य और छट्ट बाल एक समय है । अजपम्य प्रदेशविम्विच्छिन्न
जपम्य बाल एक समय कम इस द्वाज बने है और छट्ट बाल तनीस सागर है ।

विशेषार्थ—मिप्प्यात्त, बीज बार ननुमज्जकी जपम्य प्रदेशविम्विच्छिन्न नारक पर्याय-
में अन्तमुहूर्त काय भय रहनर हाय्य भी सम्भव है इसके बाद इसकी पूर्ण अन्तमुहूर्त बाल
तक अजपम्य प्रदेशविम्विच्छिन्न होती है । तथा पणितकमरविम्विच्छिन्न आकर मरकमें उत्पन्न हुए
जिम अन्तमुहूर्त बाल हा जाय्य है इसका पुनरार दाम्य एति अरुति और शोकका जपम्य प्रदेश-
विम्विच्छिन्न होती है और हमने पूर्ण अन्तमुहूर्त बाल तक अजपम्य प्रदेशविम्विच्छिन्न रहती है, इसलिए
इन मय प्रवृत्तिर्षी अजपम्य प्रदेशविम्विच्छिन्न जपम्य बाल अन्तमुहूर्त क्या है । सम्मत्त आदि
द प्रवृत्तिर्षी अजपम्य प्रदेशविम्विच्छिन्न जपम्य बाल एक समय अनुलङ्घके समान पणित
कर सेना आदि है । बार कपय, मय और जुगुप्सकी जपम्य प्रदेशविम्विच्छिन्न मरक मय समकमें

१ २७. पहमाए जाव छटि ति मिच्छत्त-इत्थि-णवुंसयवेदाणं जह० पदे० जहणुक्क० एगस० । अज० जह० जहण्णट्ठिदी, उक्क० सगुक्कस्सट्ठिदी । सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्काणं जह० पदे० जहणुक्क० एगस० । अज० जह० एगस०, उक्क० सगुक्कस्सट्ठिदीओ । वारसक्क०-भय-दुगुंछाणं जह० पदे० जहणुक्क० एगस० । अज० जह० जहण्णट्ठिदी समज्जणा, उक्क० सगट्ठिदी । पुरिसवेद-हस्स-रदि-अरदि-सोगाणं जह० पदे० जहणुक्क० एगस० । अज० जह० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदीओ ।

१ २८. सत्तमाए मिच्छत्त-अणंताणु०चउक्क०-इत्थि-पुरिस-णवुंसयवेद-हस्स-रदि-अरदि-सोगाणं जह० पदे० जहणुक्क० एगस० । अज० जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि । एवं सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताण । णवरि अज० जह० एगस० ।

प्राप्त होती है, इसलिए इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय कम दस हजार वर्ष कहा है । सब अट्ठाईस प्रकृतियोंकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है यह स्पष्ट ही है ।

§ २७ प्रथम पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तकके नारकियोंमें मिथ्यात्व, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य प्रदेश-विभक्तिका जघन्य काल जघन्य स्थितिप्रमाण है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति-प्रमाण है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । वारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय कम जघन्य स्थितिप्रमाण है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । पुरुषवेद, हास्य, रति, अरति और शोककी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है ।

विशेषार्थ—प्रथमादि छह पृथिवियोंमें उत्कृष्ट आयुवाले जीवके अन्तिम समयमें मिथ्यात्व, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका जघन्य स्वामित्व बतलाया है, इसलिए यहाँ इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल अपनी अपनी जघन्य स्थितिप्रमाण कहा है । सम्यक्त्व आदि छह प्रकृतियोंकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय सामान्य नारकियोंके समान घटित कर लेना चाहिए । आगे भी जहाँ यह काल इतना कहा हो वहाँ वह इसी प्रकार जानना चाहिए । वारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य प्रदेशविभक्ति भवके प्रथम समयमें होती है, इसलिए इसका जघन्य काल एक समय कम जघन्य स्थितिप्रमाण कहा है । पुरुषवेद आदिकी जघन्य प्रदेशविभक्ति भवके प्रारम्भमें अन्तर्मुहूर्त काल जाने पर होती है, इसलिए इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा है । इन अट्ठाईस प्रकृतियोंकी अजघन्य प्रदेश-विभक्तिका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है ।

§ २८ सातवीं पृथिवीमें मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति और शोककी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है ।

वारसङ्ग-भय-दुर्गुणां नह० पदे० अहण्डुङ्ग० एगस० । अम० नह० बावीस
सामरावमाणि, षड्० तेवीस सामरावमाणि ।

§ २६ तिरिक्कगतीए तिरिक्कलेसु मिच्छस०-वारसङ्ग-भय-दुर्गुणां-
नपुंसकसंज्ञार्थं नह० पदे० अहण्डुङ्ग० एगस० । अम० नह० सुदामवगाहर्ण, षड्०
अर्णतकसमसंज्ञेया पांगसुपरियहा । सम्मत्-सम्माभिच्छाणं नह० पदे० अहण्डुङ्ग०
एगस० । अम० नह० एगस०, षड्० तिग्गि पस्सिदोपमाणि पस्सिदो० अर्णसे०-
मागेण सादिरेयाणि । अर्णवाणु० पदङ्ग नह० अहण्डुङ्ग० एगस० । अम० नह०
एगस०, षड्० अर्णतकसमसंज्ञेया पोमासुपरियहा । पुरिसवद-इस्त रदि-अरदि
सोगार्ण नह० पदे० अहण्डुङ्ग० एगस० । अम० नह० अंतोसु, षड्० अर्णतकसं-
मसंज्ञे०पो०परियहा ।

इसी प्रकार अन्यक्त और सम्ममिच्छात्कय मङ्ग जानता चाहिए । इतनी विवेक है कि
अजपय्य प्रदेशकिमिच्छि अजपय्य अल एक समय है । बाह्य कपाय मय और कुगुप्पकी
अजपय्य प्रदेशकिमिच्छि अजपय्य और छत्तु अल एक समय है । अजपय्य प्रदेशकिमिच्छि अजपय्य
अल बाईस सगर है और छत्तु अल तेवीस सगर है ।

विशेषार्थ—संखीं छविर्णोमी ओपके समाव त्थामित्थ है, इत्थिए यहाँ मिच्छात्
आदि बाह्य प्रकृतियोंकी अजपय्य प्रदेशकिमिच्छि अजपय्य अल अन्तर्मुहूर्त वच जानेसे
कह छत्तु अलप्रमाण कहा है । अन्यक्तयिच्छा मङ्ग छत्तु प्रकृतियोंके समाव है यह स्पष्ट
ही है । मात्र इनकी अजपय्य प्रदेशकिमिच्छि छेत्तनाकी अपेक्षा अजपय्य अल एक समय बन
जायेसे कह अलगासे कहा है । बाह्य कपाय, मय और कुगुप्पकी अजपय्य प्रदेशकिमिच्छि अजपय्य
हाथके प्रथम समयमें होती है, इत्थिए इनकी अजपय्य प्रदेशकिमिच्छि अजपय्य अल बाईस सगर
कहा है । इन अहार्णस प्रकृतियोंकी अजपय्य प्रदेशकिमिच्छि छत्तु अल तेवीस सगर है यह
स्पष्ट ही है ।

§ २६ तिरिक्कगतिमे तिरिक्कोमि मिच्छात्, बाह्य कपाय, मय, कुगुप्प कीचेत् और
वपु स्तम्भेकी अजपय्य प्रदेशकिमिच्छि अजपय्य और छत्तु अल एक समय है । अजपय्य प्रदेश-
किमिच्छि अजपय्य अल छत्तु अल मयप्रमाण है और छत्तु अल अजपय्य अल है जो अर्णस्योत्त
पुद्गल परिवर्तनके कारण है । अन्यक्त और सम्ममिच्छात्कय अजपय्य प्रदेशकिमिच्छि अजपय्य
और छत्तु अल एक समय है । अजपय्य प्रदेशकिमिच्छि अजपय्य अल एक समय है और छत्तु
अल पस्योत्त अर्णस्योत्तों मग अधिक तीन पस्य है । अनन्तामुक्कीच्छुप्पकी अजपय्य
प्रदेशकिमिच्छि अजपय्य और छत्तु अल एक समय है । अजपय्य प्रदेशकिमिच्छि अजपय्य अल एक
समय है और छत्तु अनन्त अल है जो अर्णस्योत्त पुद्गल परिवर्तनके कारण है । पुद्गलेव हास्य
यति, अयति और शोककी अजपय्य प्रदेशकिमिच्छि अजपय्य और छत्तु अल एक समय है । अजपय्य
प्रदेशकिमिच्छि अजपय्य अल अन्तर्मुहूर्त है और छत्तु अजपय्य अल है, जो अर्णस्योत्त पुद्गल
परिवर्तनके कारण है ।

विशेषार्थ—तिरिक्कोकी अजपय्य मयमिति छत्तुअलप्रमाण है और अजपय्य मय-
मितिवापे जीवके मिच्छात् आदि प्रथम पञ्चकीं कही गइ प्रकृतियोंकी अजपय्य प्रदेशकिमिच्छि

§ ३०. पंचिदियतिरिक्खतियम्मि मिच्छत्तिथि-णुंसयवेद-वारसक०-भय-
दुगुंखाणं जह० पदे० जहणुक्क० एगस० । अज० जह० खुदाभवग्गहणमंतोमुहुत्तं,
उक्क० सगट्ठिदी । सम्पत्त-सम्मामि०--अणंताणु० चउक्काणमेवं चेव । णवरि अज०
जह० एगस० । पंचणोकसायाणं जह० पदे० जहणुक्क० एगस० । अज० जह०
अंतो०, उक्क० सगट्ठिदी ।

§ ३१. पंचिदियतिरिक्खअपज्जत्ताण मिच्छत्त-सोलसक०-भय-दुगुंख० जह०
पदे० जहणुक्क० एगस० । अज० जह० खुदाभवग्गहणं समयूणं, उक्क० अंतोमु० ।

होती नहीं, इसलिए यहाँ उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल जुल्लकभव-
ग्रहणप्रमाण कहा है। तथा तिर्यञ्चोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति अनन्त काल है, इसलिए उक्त
प्रकृतियोंकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका उत्कृष्ट काल अनन्त काल कहा है। यहाँ सम्यक्त्वद्विककी
एक समय तक सत्ता उद्वेलनाकी अपेक्षा वन जाती है, इसलिए इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका
जघन्य काल एक समय कहा है। तथा जो पल्यके असंख्यातवे भागप्रमाण काल तक इनकी
उद्वेलना कर सत्त्व नाश हुए बिना तीन पल्यकी आयुवाले तिर्यञ्चोंमें उत्पन्न होकर और सम्यक्त्वको
उत्पन्न कर अन्त तक इनकी सत्ता वनाये रखते हैं उनके इतने काल तक इनकी सत्ता दिखलाई
देनेसे यहाँ इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवे भाग अधिक
तीन पल्य कहा है। अनन्तानुवन्धीचतुष्ककी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय
पहले अनेक बार घटित करके वतला आये हैं उसी प्रकार यहाँ भी घटित कर लेना चाहिए।
तथा इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका उत्कृष्ट काल मिथ्यात्वके समान है यह स्पष्ट ही है। इसी
प्रकार पुरुषवेद आदि पाँचकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका उत्कृष्ट काल जानना चाहिए। तथा इसका
जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त प्रथम नरकके समान घटित कर लेना चाहिए।

§ ३० पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमे मिथ्यात्व, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, वारह कषाय, भय और
जुगुप्साकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य प्रदेश-
विभक्तिका जघन्य काल सामान्यसे पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंमें जुल्लकभवग्रहणप्रमाण और शेष दोमें
अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी कायस्थितिप्रमाण है। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व
और अनन्तानुवन्धीचतुष्कका भन्न इसी प्रकार है। इतनी विशेषता है कि इनकी अजघन्य प्रदेश-
विभक्तिका जघन्य काल एक समय है। पाँच नोकषायोंकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और
उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल
अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है।

विशेषार्थ— यहाँ अन्य सब स्पष्टीकरण सामान्य तिर्यञ्चोंके समान कर लेना चाहिए।
केवल दो बातोंमें विशेषता है। एक तो पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्त और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनी
जीवोंकी जघन्य भवस्थिति अन्तर्मुहूर्त है, इसलिए इनमें मिथ्यात्व आदिकी जघन्य प्रदेशविभक्ति-
का जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। दूसरे इन तीनों प्रकारके तिर्यञ्चोंकी कायस्थिति पूर्वकोटि-
पृथक्त्व अधिक तीन पल्य है और इतने काल तक यहाँ अर्द्धाईस प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्ति
हुए बिना भी सत्ता रह सकती है, इसलिए यहाँ इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका उत्कृष्ट काल अपनी
अपनी कायस्थितिप्रमाण कहा है।

§ ३१. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी
जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य प्रदेशविभक्तिका

§ ३३. देवगईए देवेसु मिच्छत्तिस्थि-णवुंसयवेदानं जह० पदे० जहणुक्कस्स० एगस० । अज० जह० दसवस्ससहस्साणि, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि । एवमणंताणु०-चउक्क०-सम्म० सम्मामिच्छत्ताणं । णवरि अज० जह० एगस० । वारसक०-भय-दुगुंछाणं मिच्छत्तभंगो । पंचणोक० जह० पदे० जहणुक्क० एगस० । अज० जह० अंतोमुहु०, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि ।

§ ३४. भवणादि जाव उवरिमगेवज्जा त्ति मिच्छत्तिस्थि-णवुंसयवेदानं जह० पदे० जहणुक्क० एगस० । अज० जह० जहणुट्ठिदी, उक्क० उक्कस्सट्ठिदी । सम्पत्त०-सम्मामि०-अणंताणु०-चउक्काणं जह० पदेस० जहणुक्क० एगस० । अज० जह० एगस०, उक्क० उक्क०-ट्ठिदी । वारसक०-भय-दुगुंछाणं जह० पदे० जहणुक्क० एगस० । अज० जह० जहणुट्ठिदी समयूणा, उक्क० उक्कस्सट्ठिदी । पंचणोक०

प्रमाण है यह स्पष्ट ही है । मात्र सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्बेलना होकर अभाव न हो जाय ऐसा करते हुए उनका सत्त्व बनाये रखना चाहिए ।

§ ३३ देवगतिमें देवोंमें मिथ्यात्व, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल दस हजार वर्ष है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है । इसी प्रकार अनन्तानुबन्धीचतुष्क, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके विषयसे जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय है । बारह कपाय, भय और जुगुप्साका भङ्ग मिथ्यात्वके समान है । पाँच नोकपायोंकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है ।

विशेषार्थ—देवोंमें स्वामित्वको देखते हुए मिथ्यात्व, बारह कपाय, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, भय और जुगुप्साकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर बन जाता है, इसलिए यह काल उक्त प्रमाण कहा है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क और पाँच नोकपायोंकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका उत्कृष्ट काल भी इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए । मात्र इनके अजघन्य प्रदेशसत्त्वर्भके जघन्य कालमें अन्तर है, इसलिए वह अलगसे कहा है । उनमेंसे प्रारम्भकी छह प्रकृतियोंकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय तो अनुप्योंके समान यहाँ भी घटित हो जाता है । मात्र पाँच नोकपायोंकी जघन्य प्रदेशविभक्ति देवोंमें उत्पन्न होनेके अन्तर्मुहूर्तवाद सम्भव है, इसलिए यहाँ इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा है ।

§ ३४ भवनवासियोंसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंमें मिथ्यात्व, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल अपनी अपनी जघन्य स्थितिप्रमाण है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । बारह कपाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय कम अपनी अपनी जघन्य स्थितिप्रमाण है ।

घह० पदे० जहण्णुकक० एगस० । अम० जह० अंतोसु०, चह० सगडिदीमो ।

॥ ३३ ॥ अशुरिसादि भाव अवराहो वि मिच्छत्त-सम्मापि० इत्थि-उत्तुंसप-
वदाणं जह० पदे० जहण्णुकक० एगस० । अम० ज० जहण्णुद्विदी, चक्क०
चक्कस्सद्विदी । सम्पत्त० जह० पदे० जहण्णुकक० एगस० । अम० जह० एमस०,
चक्क० सगडिदी । एवमपत्तणु० चक्क०-इत्त-इदि-अरदि-सोगाण । णधरि अम०
जह० अंतोसु० । बारसक०-शुरिस मय-मुत्तुंहात्तं जह० पदे० जहण्णुकक० एगस० ।
अम० जह० जहण्णुद्विदी समऊत्ता, चह० सगडिदी ।

और बहुत काल अपनी अपनी बहुत स्थितिप्रमाण है । पाँच नोकपायोकी अवस्था प्रदेश-
विशेषिक अवस्था और बहुत काल एक समय है । अत्रापन्य प्रदेशविशेषिक अवस्था कल
अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है और बहुत काल अपनी अपनी बहुत स्थितिप्रमाण है ।

विशेषार्थ—यहाँ बाह्य कथाय, मय और अणुपञ्चाकी अवस्था प्रदेशविशेषिक अवस्था के प्रथम
समयमें होती है, इसलिये इनकी अत्रापन्य प्रदेशविशेषिक अवस्था कल एक समय कम अपनी
अपनी अवस्था स्थितिप्रमाण कहा है । शेष काल सुगम है क्योंकि उसका सामान्य क्षेत्रमें
स्वच्छावस्था आये हैं । यही प्रकार यहाँ भी कर लेना चाहिए ।

॥ ३४ ॥ अनुशिरासे कल अपराधित तकके क्षेत्रमें मिच्छत्त, सम्ममिध्यात्, इति
और नृपसक्रेष्ठी अवस्था प्रदेशविशेषिक अवस्था और बहुत काल एक समय है । अत्रापन्य
प्रदेशविशेषिक अवस्था कल अपनी अपनी अवस्था स्थितिप्रमाण है और बहुत काल अपनी
अपनी बहुत स्थितिप्रमाण है । सम्पत्तकी अवस्था प्रदेशविशेषिक अवस्था और बहुत
काल एक समय है । अत्रापन्य प्रदेशविशेषिक अवस्था कल एक समय है और बहुत काल
अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है । यही प्रकार अनन्तमुहूर्तकी अवस्था, हात्त एति, अरति और
शोककी अपेक्षा कल जानना चाहिए । इसी विशेष है कि इनकी अत्रापन्य प्रदेशविशेषिक
अवस्था कल अन्तर्मुहूर्त है । बाह्य कथाय, मुहूर्तमेव भव और अणुपञ्चाकी अवस्था प्रदेशविशेषिक
अवस्था और बहुत काल एक समय है । अत्रापन्य प्रदेशविशेषिक अवस्था कल एक
समय कम अपनी अपनी अवस्था स्थितिप्रमाण है और बहुत काल अपनी अपनी बहुत
स्थितिप्रमाण है ।

विशेषार्थ—यहाँ मिच्छत्त आदि की अवस्था प्रदेशविशेषिक अवस्था आनुवात जीवोंके
मनके प्रथम समयमें समग्र नहीं है, इसलिये इनकी अत्रापन्य प्रदेशविशेषिक अवस्था कल
अपनी अपनी अवस्था स्थितिप्रमाण और बहुत काल अपनी अपनी बहुत स्थितिप्रमाण कहा
है । अन्तर्मुहूर्तके कालमें एक समय शेष रहने पर ऐसा जीव मरकर यहाँ उत्पन्न हो सकता है
इसलिये सम्पत्तकी अवस्था प्रदेशविशेषिक अवस्था कल एक समय कहा है । अनन्तमु-
हूर्तकी अवस्था आदि आठ प्रकृतियोंकी अवस्था प्रदेशविशेषिक मनके अन्तर्मुहूर्त का प्रमाण होती है,
इसलिये इसकी अत्रापन्य प्रदेशविशेषिक अवस्था कल अन्तर्मुहूर्त कहा है । बाह्य कथाय आदि
की अवस्था प्रदेशविशेषिक मनके प्रथम समयमें होती है, इसलिये इनकी अत्रापन्य प्रदेशविशेषिक
अवस्था कल एक समय कम अपनी अपनी अवस्था स्थितिप्रमाण कहा है । इन सब
प्रकृतियोंकी अवस्था प्रदेशविशेषिक बहुत काल अपनी अपनी बहुत स्थितिप्रमाण है यह
स्पष्ट ही है ।

§ ३६. सन्वद्वसिद्धिभि मिच्छ०-सम्माभि०-वारसक०-इत्थि-पुरिस-णवुंसय-वेद-भय-दुगुंवाणं जह० पदे० जहणुक्क० एगस० । अज० जह० तेत्तीसं सागरो-वमाणि समऊणाणि, उक्क० तेत्तीसं सागरो० । सम्म० जह० पदे० जहणुक्क० एगस० । अज० जह० एगस०, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि । अणंताणु० चउक्क०-हस्स-रदि-अरदि-सोगाणं जह० पदे० जहणुक्क० एगस० । अज० जह० अंतोपु०, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि । एवं जाणिदूण णेदव्व जाव अणाहारि चि ।

एवं कालाणुगमो समत्तो ।

❀ अंतरं ।

§ ३७. पइज्जामुत्तमेदं सुगमं ।

❀ मिच्छत्तस्स उक्कस्सपदेससंतकम्मियंतरं जहणुक्कस्सेण अणंत-कालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्ठा ।

§ ३६. सर्वार्थसिद्धिमें मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, वारह कषाय, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसक-वेद, भय और जुगुप्साकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय कम तेतीस सागर है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है । सम्यक्त्व प्रकृतिकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है । अनन्तानुबन्धीचतुष्क, हास्य, रति, अरति और शोककी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है । इस प्रकार जान कर अनाहारक मार्गणा तक ले जाना चाहिए ।

विशेषार्थ—यहाँ मिथ्यात्व आदिकी जघन्य प्रदेशविभक्ति भवके प्रथम समयमें होनेसे इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय कम तेतीस सागर कहा है । कृतकृत्यवेदकका एक समय काल यहाँ उपलब्ध हो सकता है, इसलिए सम्यक्त्वकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय कहा है । तथा अनन्तानुबन्धीचतुष्क आदि प्रकृतियोंकी अजघन्य प्रदेशविभक्ति यहाँ अन्तर्मुहूर्त काल तक सम्भव है, इसलिए उसका जघन्य काल अन्तर्-मुहूर्त कहा है । सब प्रकृतियोंकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका उत्कृष्ट काल पूरा तेतीस सागर है यह स्पष्ट ही है । यहाँ तक जो काल कहा है उसे देखकर वह अनाहारक मार्गणातक घटित कर लेना चाहिए, इसलिए उसे इसके समान ले जानेकी सूचना की है ।

इस प्रकार कालानुगम समाप्त हुआ ।

❀ अन्तर ।

§ ३७. यह प्रतिज्ञा सूत्र सुगम है ।

❀ मिथ्यात्वके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तनके बराबर है ।

जह० पदे० जहण्णुक्क० एगस० । अज० जह० अंतोह०, उक्क० सगहिदीमो ।

§ ३३ अणुविसादि जाव मवरपदो सि मिच्छत्त-सम्मामि० इत्थि-शुवुसय वेदाणं जह० पदे० जहण्णुक्क० एगस० । अज० ज० जहण्णुहिदी, उक्क० उक्कस्सहिदी । सम्मत्त० जह० पदे० जहण्णुक्क० एगस० । अज० जह० एगस०, उक्क० सगहिदी । एवमणंताणु० भवक्क०-इत्त-रदि-भरदि-सोगाणं । जवरि अज० जह० अंतोह० । बारत्तक्क० पुरित्त भय-शुवुंकाणं जह० पद० जहण्णुक्क० एगस० । अज० जह० जहण्णुहिदी समऊण्ण, उक्क० सगहिदी ।

और छत्त कस अपनी अपनी छत्त स्थितिप्रमाण है । पाँच नोक्याबोकी वचन्य प्रदेश-विमर्शिका जपन्य और छत्त कस एक समय है । अजपन्य प्रदेशविमर्शिका जपन्य कस अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है और छत्त कस अपनी अपनी छत्त स्थितिप्रमाण है ।

विशेषार्थ—यहाँ बार कथाव भय और श्रुत्याकी जपन्य प्रदेशविमर्शिका मक्के प्रथम समयमें होती है, इसलिये इनकी अजपन्य प्रदेशविमर्शिका जपन्य कस एक समय कम अपनी अपनी जपन्य स्थितिप्रमाण कहा है । शेष कस सुगम है, क्योंकि कस सामान्य देवोंमें स्वीकृत्य आये हैं । छती प्रकार यहाँ भी कर लेना चाहिए ।

§ ३४. अनुविरासे लेकर आपराजित तकके देवोंमें मिथ्यात्व, सम्मिमिथ्यात्व अथवा और नृपुंसत्वेकी जपन्य प्रदेशविमर्शिका जपन्य और छत्त कस एक समय है । अजपन्य प्रदेशविमर्शिका जपन्य कस अपनी अपनी जपन्य स्थितिप्रमाण है और छत्त कस अपनी अपनी छत्त स्थितिप्रमाण है । सम्मत्तकी जपन्य प्रदेशविमर्शिका जपन्य और छत्त कस एक समय है । अजपन्य प्रदेशविमर्शिका जपन्य कस एक समय है और छत्त कस अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है । नती प्रकार अनन्ताजपनीकनुष्क, हास्य, रति, अरति और शोककी अपेक्षा कस जानना चाहिए । इतनी विवेक है कि इनकी अजपन्य प्रदेशविमर्शिका जपन्य कस अन्तर्मुहूर्त है । बार कथाव पुरुषेश भय और श्रुत्याकी जपन्य प्रदेशविमर्शिका जपन्य और छत्त कस एक समय है । अजपन्य प्रदेशविमर्शिका जपन्य कस एक समय कम अपनी अपनी जपन्य स्थितिप्रमाण है और छत्त कस अपनी अपनी छत्त स्थितिप्रमाण है ।

विशेषार्थ—यहाँ मिथ्यात्व आदिकी जपन्य प्रदेशविमर्शिका जपन्य आनुवासे जीवोंके मक्के प्रथम समयमें सम्भव नहीं है, इसलिये इनकी अजपन्य प्रदेशविमर्शिका जपन्य कस अपनी अपनी जपन्य स्थितिप्रमाण और छत्त कस अपनी अपनी छत्त स्थितिप्रमाण कहा है । अन्तर्मुहूर्तके कसमें एक समय शेष राज पर देख जीव मरकर यहाँ वचन हो करता है, इसलिये सम्मत्तकी अजपन्य प्रदेशविमर्शिका जपन्य कस एक समय कहा है । अनन्ताजपनीकनुष्क आदि आठ मरुतियोंकी जपन्य प्रदेशविमर्शिका मक्के अन्तर्मुहूर्त बार प्राप्त होती है, इसलिये इनकी अजपन्य प्रदेशविमर्शिका जपन्य कस अन्तर्मुहूर्त कहा है । बार कथाव आदि की जपन्य प्रदेशविमर्शिका मक्के प्रथम समयमें होती है, इसलिये इनकी अजपन्य प्रदेशविमर्शिका जपन्य कस एक समय कम अपनी अपनी जपन्य स्थितिप्रमाण कहा है । इन सब मरुतियोंकी अजपन्य प्रदेशविमर्शिका छत्त कस अपनी अपनी छत्त स्थितिप्रमाण है वा स्पष्ट हो-वे ।

❀ अंतरं जहणयं जाणिदूण एदेव्वं ।

§ ४१. एदस्स सुत्तस्स अत्थो सुगमो, जहणपदेसविहत्तियाणं सन्वेसिं पि अंतराभावादो ।

एवमंतरं समत्तं ।

४२. संपहि चुण्णिमुत्तेण देसामासिएण सूइदमत्थमुच्चारणाइरिएण परुविदं वत्तइस्सामो । अपुणरुत्तत्थो चेव किण्ण बुच्चदे ? ण, कत्थ वि चुण्णिमुत्तेण उच्चारणाए भेदो अत्थि त्ति तब्भेदपदुप्पायणदुवारेण पउणरुत्तियाभावादो ।

§ ४३. अतर दुविह—जहणमुक्कस्सय च । उक्कस्सए पयदं । दुविहो णिदे सो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छत्त-अट्ठक० अट्ठणोक० उक्क० पदेस-विहत्तिअंतरं जहणुक० अणंतकालमसंखेज्जा पोगलपरियट्ठा । अणुक० जहणुक० एगस० । सम्मत्त०-सम्मामि० उक्क० पदेसविह० णत्थि अंतरं । अणुक० पदे० जह० एगस०, उक्क० उवट्ठुपोगलपरियट्ठं । अणंताणु० चउक्क० उक्क० पदे० जहणुक० अणत० मसंखे०-पो० परियट्ठा । अणुक० जह० एगस०, उक्क० वेद्धावट्ठिसागरोवमाणि देसूणाणि । पुरिसवेद-चदुसंज० उक्क० पदे० णत्थि अंतर । अणुक० पदे० जहणुक० एगस० ।

❀ जघन्य अन्तरकाल भी जानकर ले जाना चाहिए ।

§ ४१ इस सूत्रका अर्थ सुगम है, क्योंकि सभी जघन्य प्रदेशविभक्तियोंका अन्तरकाल नहीं उपलब्ध होता ।

इस प्रकार अन्तरकाल समाप्त हुआ ।

§ ४२ अब चूर्णिसूत्रके द्वारा देशामर्षकरूपसे सूचित हुए जिस अर्थका उच्चारणाचार्यने कथन किया है उसे बतलाते हैं ।

शंका—अपुनरुक्त अर्थको ही क्यों नहीं कहते ?

समाधान—नहीं, क्योंकि कहीं पर चूर्णिसूत्रसे उच्चारणमें भेद है, इसलिए उस भेदके कथन द्वारा पुनरुक्त दोष नहीं आता । अर्थात् उसके पुनः कथन करने पर भी वह अपुनरुक्तके समान हो जाता है ।

§ ४३. अन्तर दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे मिथ्यात्व, आठ कषाय और आठ नोकषायोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तनके बराबर है । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर उपार्ध पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है । अनन्तानुवन्धी-चतुष्ककी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तनके बराबर है । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छयासठ सागरप्रमाण है । पुरुषवेद और चार संज्वलनकी उत्कृष्ट प्रदेश-विभक्तिका अन्तरकाल नहीं है । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक

§ ३८= गुणितकर्मसिपयस्त अगुणितकर्मसिपयमावृणमिय नहण्येन
 पक्षस्तेन वि अर्णवेन काखेन विणा पुणो गुणितमावेण परिणमयसत्तीए ममाबादो ।
 अहण्णेण अर्सलेखा खोग्ग वि अंतरं किण्ण पक्खिदं ? ज, तस्सुपदेसस्त
 अपवाइत्तमानत्तमाणावण्ड तदपक्कमभादो ।

⊗ एवं सेसाण कम्माण येवम्भ ।

§ ३९. एदस्स सुवस्स अत्यो बुवदे । तं बहा-अडकसाप-अडनोकसायानं
 मिच्छत्तमंमो । अर्णतालु-पक्क- सक्क- पदे- मिच्छत्तमंमो ।

⊗ णवरि सम्मत-सम्माभिच्छत्ताय पुरिसवेद-अवुसजजयाच च
 उदसपदेसविहत्तिअतर णत्थि ।

§ ४०. इदो ! स्वयमसैवीए समुप्पण्णत्तादो ।

एवमुक्त्तसपदेसविहत्तिअंतरं समत्तं ।

§ ३८. क्योंकि जो गुणितकर्मश्रिक बीज अगुणितकर्मश्रिकमयको प्राप्त होता है उसके
 अपन्य और उत्तुष्ट दोनों प्रकार अनन्त कालके बिना पुनः गुणितकर्मश्रिकरूपसे परिणमन
 करनेकी शक्ति नहीं पाई जाती ।

शंभ-गुणितकर्मश्रिक बीजका अपन्य अन्तर अर्चक्यात लोकप्रमाण क्यों नहीं कहा ?

समाधान-नहीं, क्योंकि वह उपदेस अपवाइत्तमाय है इस बातका ज्ञान करनेके लिए वह
 नहीं कहा ।

विशेषार्थ-पहले कहा प्रकृष्टाके समय भूमिसूत्रमें अग्न्य उपदेसके अनुसार
 मिप्यात्वके अनुत्तुष्ट प्रदेशस्तर्कमय अपन्य काल अर्चक्यात लोकप्रमाण वह जाने हैं इसलिये
 यहाँ यह शंभ की गई है कि इसी उपदेसके अनुसार मिप्यात्वके उत्तुष्ट प्रदेशस्तर्कमय अपन्य काल
 अर्चक्यात लोकप्रमाण भी करना चाहिए था । बीरसेन स्वामीने इस शंभका जो समाधान किया
 है उसका भाव यह है कि वह उपदेस अपक्वमान है यह विरलतामा आवश्यक था इसलिये भूमि-
 सूत्रकारन यहाँ कमत्र निर्देश नहीं किया है ।

⊗ इसी प्रकार छेप कर्मोंका अन्तरकास जानना चाहिए ।

§ ३९. अब इस सूत्रका अर्थ स्पष्ट है-आठ कणव और आठ नाकपायोंका भङ्ग मिप्यात्व
 के समान है । अनन्तानुबर्गीअनुष्णकी उत्तुष्ट प्रदेशप्रतिमिच्छा भङ्ग मिप्यात्वके समान है ।

विशेषार्थ-यहाँ पर अनन्तानुबर्गीअनुष्णकी आठ कणव और आठ नाकपायोंके
 स्वयं परिणाम न करके अनन्तानुबर्गीअनुष्णकी उत्तुष्ट प्रदेशप्रतिमिच्छा भङ्ग मिप्यात्वके समान
 हैं यह कहा है ता उनका धारण यह है कि अनन्तानुबर्गीअनुष्णकी अनुत्तुष्ट प्रदेशप्रतिमिच्छा
 अन्तराकारमें मिप्यात्वसे कुछ अन्तर है यह शिखराना आवश्यक था इसलिये बीरसेन स्वामीने
 कमत्र असंगत निर्देश किया है ।

○ इसी विग्रहण है कि सम्पत्त्व, सम्पग्मिप्यात्व, धूपकद और चार
 संभवमनकी उत्तुष्ट प्रदेशप्रतिमिच्छा अन्तरकास नहीं है ।

§ ४०. क्योंकि इनकी उत्तुष्ट प्रदेशप्रतिमिच्छा उपक्रमेष्ठिम अन्तर्ग होती है ।

इस प्रकार उत्तुष्ट प्रदेशप्रतिमिच्छा अन्तरकास समाप्त हुआ ।

❀ अंतरं जहण्णयं जाणिदूण णेदच्चं ।

§ ४१. एदस्स सुत्तस्स अत्थो सुगमो, जहण्णपदेसविहत्तियाणं सव्वेसिं पि अंतराभावादो ।

एवमंतरं समतं ।

४२. संपहि चुण्णिमुत्तेण देसामासिएण सूइदमत्थमुच्चारणाइरिएण परुविदं वत्तइस्सामो । अपुणरुत्तथो चेव किण्ण बुच्चदे ? ण, कत्थ वि चुण्णिमुत्तेण उच्चारणाए भेदो अत्थि त्ति तब्भेदपटुप्पायणदुवारेण पउणरुत्तियाभावादो ।

§ ४३. अंतरं दुविह—जहण्णमुक्कस्सय च । उक्कस्सए पयदं । दुविहो णिइ सो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छत्त-अट्ठक० अट्ठणोक० उक्क० पदेस-विहत्तिअंतरं जहण्णुक० अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्ठा । अणुक० जहण्णुक० एगस० । सम्मत्त०-सम्मामि० उक्क० पदेसविह० णत्थि अंतरं । अणुक० पदे० जह० एगस०, उक्क० उवट्ठपोग्गलपरियट्ठं । अणंताणु० चउक्क० उक्क० पदे० जहण्णुक० अणंत० मसंखे०-पो० परियट्ठा । अणुक० जह० एगस०, उक्क० वेद्धावट्ठिसागरोवमाणि देसूणाणि । पुरिसवेद-चदुसंज० उक्क० पदे० णत्थि अंतर । अणुक० पदे० जहण्णुक० एगस० ।

❀ जघन्य अन्तरकाल भी जानकर ले जाना चाहिए ।

§ ४१ इस सूत्रका अर्थ सुगम है, क्योंकि सभी जघन्य प्रदेशविभक्तियोंका अन्तरकाल नहीं उपलब्ध होता ।

इस प्रकार अन्तरकाल समाप्त हुआ ।

§ ४२. अब चूणिसूत्रके द्वारा देशामर्षकरूपसे सूचित हुए जिस अर्थका उच्चारणाचार्यने कथन किया है उसे बतलाते हैं ।

शंका—अपुनरुक्त अर्थको ही क्यों नहीं कहते ?

समाधान—नहीं, क्योंकि कहीं पर चूणिसूत्रसे उच्चारणमें भेद है, इसलिए उस भेदके कथन द्वारा पुनरुक्त दोष नहीं आता । अर्थात् उसके पुनः कथन करने पर भी वह अपुनरुक्तके समान हो जाता है ।

§ ४३ अन्तर दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे मिथ्यात्व, आठ कषाय और आठ नोकषायोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तनके बराबर है । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर उपार्थ पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है । अनन्तानुबन्धी-चतुष्ककी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तनके बराबर है । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छयासठ सागरप्रमाण है । पुरुषवेद और चार सञ्चलनकी उत्कृष्ट प्रदेश-विभक्तिका अन्तरकाल नहीं है । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक

§ ३८ गुणितकर्मसियस्स अगुणितकर्मसियमावमुपणमिय अहण्णेन वडस्सेम वि अज्जेन काखेन विणा कुमो गुणितमावेन परिणमजसणीए अमावादो । अहण्णेन असंखेया सोमा वि अंतरं किन्ना पकविदं ? न, तस्सुवदेसस्स अपवाइस्समाणवणात्तवड उदपरुपवादा ।

⊗ एवं सेसाय कम्माण खेवम्भ ।

§ ३९, पदस्स सुवस्स अत्थो बुधदे । तं मया-अडकसाय अडनोकसायानं मिच्छवर्ममो । अर्णतामु० वरुड० उड० पदे० मिच्छवर्ममा ।

⊗ अवरि सम्मत-सम्मामिच्छुत्ताय पुरिसवेव-अपुसजज्जयाय व ठकसपदेसविहसिअतरं णत्थि ।

§ ४० कुवो ! सवमसेवीए समुपपणत्तादो ।

एवमुक्त्तसपदेसविहसिअतरं समर्थ ।

§ ३८. क्योंकि जो गुणितकर्माधिक बीज अगुणितकर्माधिकमात्रको प्राप्त होता है उसके अवश्य और उत्कृष्ट शानो प्रकार अमर्य कसके विषय पुनः गुणितकर्माधिकरूपसे परिक्रमण करनेकी शक्ति नहीं पाई जाती ।

शब्द—गुणितकर्माधिक बीजक अवश्य अन्तर असेक्यात लोकप्रमाण क्यों नहीं कहा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि वह उपदेस अपवाइज्जमाय है इस बातका दाव करनेके लिए वह नहीं कहा ।

विशेषार्थ—पहले कस प्रकारके समय बुद्धिसूत्रमें अन्व उपदेसके अनुसार मिथ्यात्वके अनुत्कृष्ट प्रदेशसत्त्वमैत्र अवश्य कस असेक्यात लोकप्रमाण वह आते हैं इसलिये यहाँ वह शब्द भी गये है कि छठी उपदेसके अनुसार मिथ्यात्वके उत्कृष्ट प्रदेशसत्त्वमैत्र अवश्य कस असेक्यात लोकप्रमाण भी कहा जाहिय था । बीरसेन स्वामीने इस शब्दका जो समाधान किया है उसका भाव यह है कि वह उपदेस अमर्यमान है वह विलक्षणता आवश्यक था इसलिये बुद्धि-सूत्रकरने यहाँ उसका निर्देश नहीं किया है ।

⊗ इसी प्रकार छेप कर्मोंका अन्तरकास जानना चाहिये ।

§ ३९ अब इस सूत्रका अर्थ कहा है—आठ कथय और आठ लोकपायोंका मङ्ग मिथ्यात्व के समान है । अनन्त्यानुबन्धीकानुष्करी उत्कृष्ट प्रदेशविमर्शिका मङ्ग मिथ्यात्वके समान है ।

विशेषार्थ—यहाँ पर अनन्त्यानुबन्धीकानुष्करी आठ कथय और आठ लोकपायोंके साथ परिगणना न करके अनन्त्यानुबन्धीकानुष्करी उत्कृष्ट प्रदेशविमर्शिका मङ्ग मिथ्यात्वके समान है पत्र कहा है जो कसका कारण यह है कि अनन्त्यानुबन्धीकानुष्करी अनुत्कृष्ट प्रदेशविमर्शिके अन्तरकसमें मिथ्यात्वसे कुछ अन्तर है वह विलक्षणता आवश्यक था इसलिये बीरसेन स्वामीने वरुड असंगठे निर्देश किया है ।

⊗ इतनी विशुद्ध है कि सम्पत्त, सम्पत्तिमिथ्यात्व, पुरुषवेद और चार संशयनकी उत्कृष्ट प्रदेशविमर्शिका अन्तरकास नहीं है ।

§ ४० क्योंकि इनकी उत्कृष्ट प्रदेशविमर्शिका उपरग्रहिये उत्पन्न होती है ।

इस प्रकार उत्कृष्ट प्रदेशविमर्शिका अन्तरकास समाप्त हुआ ।

ॐ अंतरं जहण्णयं जाणिदूण णेदव्वं ।

§ ४१. एदस्स सुत्तस्स अत्थो सुगमो, जहण्णपदेसविहत्तियाणं सव्वेसिं पि अंतराभावादो ।

एवमंतरं समत्तं ।

४२. संपहि चुण्णिमुत्तेण देसामासिएण सूइदमत्थमुच्चारणाइरिएण परुविदं वत्तइस्सामो । अपुणरुत्तत्थो चेव किण्ण वुच्चेदं ? ण, कत्थ वि चुण्णिमुत्तेण उच्चारणाए भेदो अत्थि ति तव्वेदपदुप्पायणदुवारेण पउणरुत्तियाभावादो ।

§ ४३. अतर दुविह—जहण्णमुक्कस्सय च । उक्कस्सए पयद । दुविहो णिदे सो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छत्त-अट्ठकं अट्ठणोकं उक्कं पदेस-विहत्तिअंतरं जहण्णुकं अणंतकालमसंखेज्जा पोगलपरियट्ठा । अणुकं जहण्णुकं एगसं । सम्पत्तं-सम्पामिं उक्कं पदेसविहं णत्थि अंतरं । अणुकं पदे जहं एगसं, उक्कं उवट्ठपोगलपरियट्ठं । अणंताणुं च उक्कं उक्कं पदे जहण्णुकं अणतं मसंखे-पोपरियट्ठा । अणुकं जहं एगसं, उक्कं वेद्धावट्ठिसागरोवमाणि देसूणाणि । पुरिसवेद-चदुसंजं उक्कं पदे णत्थि अंतरं । अणुकं पदे जहण्णुकं एगसं ।

ॐ जघन्य अन्तरकाल भी जानकर ले जाना चाहिए ।

§ ४१. इस सूत्रका अर्थ सुगम है, क्योंकि सभी जघन्य प्रदेशविभक्तियोंका अन्तरकाल नहीं उपलब्ध होता ।

इस प्रकार अन्तरकाल समाप्त हुआ ।

§ ४२. अब चूर्णिसूत्रके द्वारा देशामर्षकरूपसे सूचित हुए जिस अर्थका उच्चारणाचार्यने कथन किया है उसे वतलाते हैं ।

शंका—अपुनरुक्त अर्थको ही क्यों नहीं कहते ?

समाधान—नहीं, क्योंकि कहीं पर चूर्णिसूत्रसे उच्चारणमें भेद है, इसलिए उस भेदके कथन द्वारा पुनरुक्त दोष नहीं आता । अर्थात् उसके पुनः कथन करने पर भी वह अपुनरुक्ते समान हो जाता है ।

§ ४३. अन्तर दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे मिथ्यात्व, आठ कपाय और आठ नोकषायोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तनके बराबर है । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर उपार्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण है । अनन्तानुबन्धी-चतुष्ककी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तनके बराबर है । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छद्मासठ सागरप्रमाण है । पुरुषवेद और चार सज्जलनकी उत्कृष्ट प्रदेश-विभक्तिका अन्तरकाल नहीं है । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक

१४४ आदशेण गेद्वपसु मिच्छा०-वारसक०-अण्णोक्क० चक्क० पदे० गत्ति
अंतरं । मयुक्क० पदं गहण्णुक्क० एगस० । सम्म-सम्मामि० अण्णवाधु० चउक्क
चक्क पदे गत्ति अंतरं । मयुक्क० गह० एगस०, चक्क० तपीसं सागरानभाणि
देसुआमि । इत्थि पुरिस-अणुसयवद्वान्णसुक्कसाधुक्कस्तपदे० गत्ति अंतरं । एवं
सत्तमाए पुहवीए ।

समय ६ ।

विशेषार्थ—गुणितकर्मावधि एक बार समाप्त होकर पुनः करने प्रारम्भ होनेमें अवन्त अन्त लगता है, इसलिये यहाँ मिच्छात्वा आदि सत्रह प्रवृत्तियोंकी बहुत प्रवेशविमर्शिका अवन्त और बहुत अवन्त अवन्तकाल कहा है । अवन्तानुबन्धीचतुष्ककी बहुत प्रवेशविमर्शिका बहुत अवन्तकाल इसी प्रकार प्रतिष्ठ कर लेना चाहिए । तथा मिच्छात्वा आदि सत्रह प्रवृत्तियोंकी बहुत प्रवेशविमर्शिका एक समयके लिए होती है, इसलिये इनकी अनुत्तम प्रवेशविमर्शिका अवन्त और बहुत अवन्तकाल एक समय कहा है । अवन्तानुबन्धीचतुष्क, बार संवत्सन और पुरुषोत्तमकी अनुत्तम प्रवेशविमर्शिका अवन्त और बहुत अवन्त काल एक समय करनेका यही कारण है । सम्मत्त्व और सम्ममिच्छात्वा ये दो अवन्त प्रवृत्तियाँ हैं इसलिये इनका क्रमसे क्रम एक समय एक और अधिकसे अधिक कर्माएँ पुनः प्रवृत्ति परितर्कनप्रमाण काल एक सत्रह व पाया जाय यह सम्भव है, इसलिये इनकी अनुत्तम प्रवेशविमर्शिका अवन्त अवन्त एक समय और बहुत अवन्त कर्माएँ पुनः प्रवृत्ति परितर्कनप्रमाण कहा है । अवन्तानुबन्धीचतुष्क ये विसंवाजना प्रवृत्तियाँ हैं । इनका सत्रह अधिकसे अधिक क्रम दो कर्मासु सागर काल एक नहीं पाया जाय इसलिये इनकी अनुत्तम प्रवेशविमर्शिका बहुत अवन्त एक कालप्रमाण कहा है । सम्मत्त्व और सम्ममिच्छात्वा बहुत प्रवेशसत्रह इतिमोक्षकी कर्माके समय तथा पुरुषोत्तम और बार संवत्सरका बहुत प्रवेशसत्रह आदिमोक्षकी कर्माके समय होता है, इसलिये इनकी बहुत प्रवेश-विमर्शिका अवन्तकाल न प्राप्त होनेसे इसका निवेद्य किया है ।

१४४ आदशेण नाविक्योमिं मिच्छात्वा वायु कथाय और वह माक्यायोंकी बहुत प्रवेश-विमर्शिका अवन्तकाल नहीं है । इनकी अनुत्तम प्रवेशविमर्शिका अवन्त और बहुत अवन्त एक समय है । सम्मत्त्व, सम्ममिच्छात्वा और अवन्तानुबन्धीचतुष्ककी बहुत प्रवेशविमर्शिका अवन्त काल नहीं है । अनुत्तम प्रवेशविमर्शिका अवन्त अवन्त एक समय है और बहुत अवन्त एक क्रम लेतीस सागर है । कर्माएँ पुरुषोत्तम और ननुसक्योत्तमकी बहुत और अनुत्तम प्रवेश-विमर्शिका अवन्तकाल नहीं है । इसी प्रकार सातवीं वृत्तिमें जायना चाहिए ।

विशेषार्थ—नवकी गुणितकर्मावधि के अन्तमें अवन्तानुत्तम अन्त लेप करने पर मिच्छात्वा आदि कर्मास प्रवृत्तियोंकी बहुत प्रवेशविमर्शिका होती है । यह यहाँ एक पर्यायमें दो बार सम्भव नहीं है, इसलिये यहाँ एक प्रवृत्तियोंकी बहुत प्रवेशविमर्शिका अवन्तकालकाल निवेद्य किया है । सम्ममिच्छात्वा और अवन्तानुबन्धीचतुष्ककी बहुत प्रवेशविमर्शिका अवन्तकालकाल निवेद्यकाल यही कारण है । तथा सम्मत्त्व और तीनों वेदोंकी बहुत प्रवेशविमर्शिका अन्तमें प्रथम समयमें होती है, इसलिये इनकी बहुत प्रवेशविमर्शिका अवन्तकालकाल निवेद्य किया है । अब रहा अनुत्तम-का विचार सो मिच्छात्वा आदि कर्मास प्रवृत्तियोंकी बहुत प्रवेशविमर्शिका एक समयमें होती है अतः इनकी अनुत्तम प्रवेशविमर्शिका अवन्त और बहुत अवन्त एक समय कहा है । सम्मत्त्व-विमर्शिका अवन्तकाल प्रवृत्तियाँ हैं और अवन्तानुबन्धीचतुष्क विसंवाजना प्रवृत्तियाँ हैं । यहाँ इनका

§ ४५. पदमाए जाव छटि ति मिच्छ०-वारसक०-णवणोक० उक्कस्साणुक्कस्स-पदे० णत्थि अंतरं । सम्म०-सम्मामि० उक्क० पदे० णत्थि अंतरं । अणुक० पदे० जह० एगस०, उक्क० सगसगट्ठिदीओ देसूणाओ । अणंताणु०चउक्क० उक्क० पदे० णत्थि अंतरं । अणुक० जह० अतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा ।

§ ४६. तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु मिच्छ०-वारसक०-अट्ठणोक० उक्कस्सा-णुक्कस्सपदे० णत्थि अंतरं । सम्म०-सम्मामि० ओघ । अणंताणु०चउक्क० उक्क० णत्थि अंतरं । अणुक० जह० अतोमु०, उक्क० तिण्णि पल्लिदोवमाणि देसूणाणि । इत्थिवेद०

सत्त्व कमसे कम एक समय और अधिकसे अधिक कुछ कम तेतीस सागर तक न हो यह सम्भव है, अतः यहाँ इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर कहा है । मात्र सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति मध्यमें होती है, इसलिए भी इसकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय प्राप्त हो जाता है और अनन्तानुवन्धी-चतुष्ककी विसंयोजना एक समयके लिए नहीं होती, इसलिए इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिकी अपेक्षासे ही प्राप्त करना चाहिए । तीनों वेदोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति भवके प्रथम समयमें होती है, इसलिए यहाँ इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेश-विभक्तिके अन्तरकालका भी निषेध किया है । यह सब अन्तर परूपणा सातवें नरकमें अविकल वन जाती है, इसलिए यहाँ सामान्य नारकियोंके समान जाननेकी सूचना की है ।

§ ४५. प्रथमसे लेकर छठी पृथिवी तकके नारकियोंमें मिथ्यात्व, वारह कपाय और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है । अनन्तानुवन्धीचतुष्ककी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है ।

विशेषार्थ—यहाँ मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति भवके प्रथम समयमें होती है, इसलिए इनकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल न प्राप्त होनेसे उसका निषेध किया है । मात्र विसंयोजनाकी अपेक्षा अनन्तानुवन्धीचतुष्कका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण वन जाता है, इसलिए इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिके जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकालका अलगसे विधान किया है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म एकवार ही प्राप्त होता है, इसलिए इसके अन्तरकालका निषेध किया है । तथा यह आयुमें अन्तर्मुहूर्त जाने पर प्राप्त होता है और ये उद्वेलना प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय कहा है और उद्वेलना प्रकृतियाँ होनेसे यहाँ इनका कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण काल तक सत्त्व न रहे यह सम्भव है, इसलिए इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका उत्कृष्ट अन्तर उक्त कालप्रमाण कहा है ।

§ ४६ तिर्यञ्चगतिमें तिर्यञ्चोंमें मिथ्यात्व, बारह कपाय और आठ नोकपायोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भङ्ग ओघके समान है । अनन्तानुवन्धीचतुष्ककी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है । अनुत्कृष्ट

चक्र० नत्ति अंतरं । मनुष्य० महन्नु० एगस० । एवं पंषिदियतिरिक्त्वत्तिपत्स ।
 गवरि सम्म०-सम्मामि० चक्र० नत्ति अंतरं । मनुष्य० मह० एगस०, चक्र०
 तिग्नि पक्षिदोषमाणि पुष्पकोटिपुषपतेजग्महियाणि । पंषिदियतिरिक्त्वत्तमपत्स० अद्वा
 बीस पयरीगण्डस्तानुचक्र० नत्ति अंतरं ।

§ ४७ मनुसगदीए मनुस्तेसु मिष्य०-अद्वफसाय णडंस० इस्त रदि-भरदि
 साग-मय दुगुंछाणं चक्रस्तापुक्स्त नत्ति अंतरं । सम्म०-सम्मामि०-अर्चवापु०-
 चवक्र० पंषिदियतिरिक्त्वत्तममो । चदुसंभस० पुरिस०-इतिवेद० चक्र० नत्ति अंतरं ।
 मनुष्य० महन्नु० एगस० । एवं मनुसपत्तत्त-मनुसिजीज । मनुसमपत्त० पंषिदिय

प्रदेशविमर्शिक्य जपम् अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और चक्र अन्तर कुल कम तीन पत्त है । सीवेरकी
 चक्र प्रदेशविमर्शिक्य अन्तरकात् नहीं है । अनुत्त प्रदेशविमर्शिक्य जपम् और चक्र अन्तर
 एक समय है । इसीप्रकार पञ्च त्रिय त्रिवैजत्रिकमें जानना चाहिए । इतनी विवेक है कि इनमें
 सम्पत्त और सम्मिमिष्यात्तकी चक्र प्रदेशविमर्शिक्य अन्तरकात् नहीं है । अनुत्त प्रदेश-
 विमर्शिक्य जपम् अन्तर एक समय है और चक्र अन्तर पूर्वकोटि पूषकत्त अधिक तीन पत्त
 है । पञ्च त्रिय त्रिवैज अपर्वात्त्रिकमें अद्वांस प्रहरियोंकी चक्र और अनुत्त प्रदेशविमर्शिक्य
 अन्तरकात् नहीं है ।

विशेषार्थ—यहाँ प्रथम दण्डकमें यही गई प्रहरियोंकी चक्र प्रदेशविमर्शिक्य उत्पन्न होनेके
 प्रथम समयमें होती है, इसलिय इनकी चक्र और अनुत्त प्रदेशविमर्शिक्य अन्तरकात्तम निषेध
 किया है । ओपमें सम्पत्त और सम्मिमिष्यात्तके अन्तरकात्तम जो मङ्ग कहा है वह यहाँ
 अधिकत्त बन जाता है, इसलिय उसे ओपके समान जाननेकी सूचना की है । अन्तानुबन्धी-
 क्तुचक्रकी चक्र प्रदेशविमर्शिक्य अन्तरकात्त सम्म नहीं है यह शुद्धिकर्मार्थविधिके हेतुनेसे
 स्पष्ट हो जाता है । पर ये विसंयोजना प्रहरियाँ हैं, इसलिय यहाँ इनके अनुत्त प्रदेशविमर्शिक्य
 जपम् अन्तर अन्तर्मुहूर्त और चक्र अन्तर कुल कम तीन पत्त कहा है । यहाँ सीवेरकी चक्र
 प्रदेशात्तम मोगमूमिमें पत्तका अर्चकपातवाँ मागप्रमाय अत्तजाने पर होता है, इसलिय इसकी
 अनुत्त प्रदेशविमर्शिक्य जपम् और चक्र अन्तरकात्त एक समय कहा है । इसकी चक्र प्रदेश-
 विमर्शिक्य अन्तरकात्त नहीं है यह स्पष्ट ही है । पञ्च त्रिय त्रिवैजत्रिकमें यह अन्तरप्ररूपका पठित
 हो जाती है, इसलिय इनमें सामान्य त्रिवैजको समान जाननेकी सूचना की है । मात्र इन
 त्रिवैजोंकी अपस्थिति पूर्वकोटिपूषकत्त अधिक तीन पत्तप्रमाय है, इसलिय इनमें सम्पत्त और
 सम्मिमिष्यात्तकी अनुत्त प्रदेशविमर्शिक्य चक्र अन्तर एक अत्तप्रमाय प्राप्त होने यहाँ इनकी
 अपेक्षा अन्तरकात्तम अलगसे निर्देश किया है । पञ्च त्रिय त्रिवैज अपर्वात्त्रिकमें सब प्रहरियोंकी
 चक्र प्रदेशविमर्शिक्य अन्तरके प्रथम समयमें प्राप्त होती है, इसलिय यहाँ चक्र और अनुत्त प्रदेश-
 विमर्शिक्य अन्तरकात्त सम्म न होनेसे उत्पन्न निषेध किया है ।

§ ४८ मनुष्यगतिमें मनुष्योंमें मिष्यात्त आठ कयय, ननुसकवेर हास्य, रति, अरति,
 शोक, मय और शृगुप्ताकी चक्र और अनुत्त प्रदेशविमर्शिक्य अन्तरकात्त नहीं है । सम्पत्त
 सम्मिमिष्यात्त और अन्तानुबन्धीकृतुचक्र मङ्ग पञ्च त्रिय त्रिवैजोंके समान है । बार
 संज्ञतम पुष्पवेर और सीवेरकी चक्र प्रदेशविमर्शिक्य अन्तरकात्त नहीं है । अनुत्त प्रदेश-
 विमर्शिक्य जपम् और चक्र अन्तर एक समय है । इसी प्रकार मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यविर्यो-

तिरिक्खअपज्जत्तभंगो ।

§ ४८. देवगदीए देवेसु मिच्छ०-वारसक०-णवणोक० उक्क० अणुक्क० णत्थि अंतरं । सम्म०-सम्मामि० उक्क० णत्थि अंतरं । अणुक्क० जह० एगस०, उक्क० एकत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि । अणंताणु०चउक्क० उक्क० णत्थि अंतरं । अणुक्क० जह० अंतोमु०, उक्क० एकत्तीसं साग० देसूणाणि । एवं भवणादि जाव उवरिमगेवज्जा ति । णवरि सगट्ठिदीओ भाणिदव्वाओ । अणुदिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धि ति । अट्ठावीसं पयडीणमुक्कस्साणुकस्स० णत्थि अंतरं । एवं णेदव्वं जाव अणाहारि ति ।

में जानना चाहिए । मनुष्य अपर्याप्तकोंमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान भङ्ग है ।

विशेषार्थ—यहाँ प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति भवके प्रथम

समयमें होती है, इसलिए इनकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिके अन्तरकालका निषेध किया है । सम्यक्त्व आदि ब्रह्म प्रकृतियोंका भङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है यह स्पष्ट ही है, क्योंकि एक तो इनकी भी उत्कृष्ट कायस्थिति पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्य है । दूसरे इनमें अनन्तानुवन्धीचतुष्पक्का उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य ही प्राप्त होता है, इसलिए पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान यहाँ भी अन्तरकाल वन जाता है । चार संज्वलन आदिकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति नृपकश्रेणिमें एक समयके लिए और चूर्णिसूत्रके अनुसार स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति भोगभूमिमें पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण काल जाने पर प्राप्त होती है, इसलिए इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय प्राप्त होनेसे वह उक्त कालप्रमाण कहा है । इनकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका अन्तर काल सम्भव नहीं है यह स्पष्ट ही है । मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनिर्योमें अन्तरकालपरूपणा सामान्य मनुष्योंके समान वन जाती है, इसलिए इनमें उनके समान जाननेकी सूचना की है । तथा स्वामित्व और कायस्थिति आदि की अपेक्षा पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंसे मनुष्य अपर्याप्तकोंमें कोई अन्तर नहीं है, इसलिए यहाँ मनुष्य अपर्याप्तकोंमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान जाननेकी सूचना की है ।

§ ४८ देवगतिमें देवोंमें मिथ्यात्व, वारह कपाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इक्कीस सागर है । अनन्तानुवन्धीचतुष्पक्की उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इक्कीस सागर है । इसी प्रकार भवनवासियोंसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंमें जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि कुछ कम इक्कीस सागरके स्थानमें कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति कहनी चाहिए । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है । इस प्रकार अनाहारक मार्गणा तक ले जाना चाहिए ।

विशेषार्थ—देवोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है यह तो स्पष्ट ही है । अब रहा अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिके अन्तरकालका विचार सो देवोंमें मिथ्यात्व आदि वाईस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति भवके प्रथम समयमें होती है, इसलिए इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिके अन्तरकालका निषेध किया है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व ये उद्वेलना

जहण० णत्थि अंतर । सम्म०-सम्मामि० जह० णत्थि अंतरं । अज० जह० एगस०,
उक्क० तेत्तीसं सागरो० देसूणाणि । अणंताणु०चउक्क० जह० णत्थि अंतरं । अज०
जह० अंतोमु०, उक्क० तेत्तीसं सागरो० देसूणाणि । एवं सत्तमाए पुढवीए ।

५५१. पढमाए जाव छट्ठि त्ति भिच्छ०-वारसक०-इत्थि-णवुंस०-भय-दुगुंछ०
जहण०|जहण० णत्थि अंतरं । सम्मत्त०-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क० जह० णत्थि
अंतरं । अज० ज० एगस० अंतोमु०, उक्क० सग-सगट्ठिदीओ' देसूणाओ । पंच-
णोक० जह० णत्थि अंतर । अज० जहणुक्क० एगस० ।

अन्तरकाल एक समय है । वारह कपाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य और अजघन्य प्रदेश-
विभक्तिका अन्तरकाल नहीं है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका
अन्तरकाल नहीं है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर
कुछ कम तेतीस सागर है । अनन्तानुवन्धीचतुष्ककी जघन्य प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं
है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस
सागर है । इसी प्रकार सातवीं पृथिवीमें जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—नरक आदि चारों गतियोंमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्ति क्षपित
कर्मा शिक जीवके होनेके कारण प्रत्येकमें दो बार सम्भव नहीं है, इसलिए सर्वत्र इसके अन्तर-
कालका निषेध किया है । 'अजघन्य प्रदेशविभक्तिके अन्तर कालका विचार करने पर नारकियोंमें
मिथ्यात्व आदि आठ प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्ति वहा उत्पन्न होनेके बाद अन्तर्मुहूर्त काल
जाने पर सम्भव है, इसलिए इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक
समय कहा है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व ये दो उद्बलना प्रकृतियाँ हैं और अनन्तानुवन्धीचतुष्क
विसंयोजना प्रकृतियाँ हैं इसलिए इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल
वन जानेसे उसका अलगसे निर्देश किया है । इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिके दोनों प्रकारके
अन्तरकालको आगे भी इसी आधारसे घटित कर लेना चाहिए । मात्र सर्वत्र जघन्य अन्तरकाल
तो एक समान है । उत्कृष्ट अन्तर काल कुछ कम अपनी अपनी स्थितिप्रमाण प्राप्त होता है ।
केवल अनन्तानुवन्धीचतुष्ककी अपेक्षा तीर्थश्चों और मनुष्योंमें वह कुछ कम तीन पत्य ही
कहना चाहिए । यहाँ वारह कपाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य प्रदेशविभक्ति भवके प्रथम समयमें
होती है, इसलिए इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिके अन्तरकालका भी निषेध किया है । सातवीं
पृथिवीमें यह प्ररूपणा अधिकल वन जाती है, इसलिए उनमें सामान्य नारकियोंके समान
जाननेकी सूचना की है ।

५५१ प्रथमसे लेकर छठी पृथिवी तकके नारकियोंमें मिथ्यात्व, वारह कपाय, स्त्रीवेद,
नपुंसकवेद, भय और जुगुप्साकी जघन्य और अजघन्य प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है ।
सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुवन्धीचतुष्ककी जघन्य प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं
है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर क्रमसे एक समय और अन्तर्मुहूर्त है तथा उत्कृष्ट
अन्तर कुछ कम अपनी-अपनी स्थितिप्रमाण है । पाँच नोकपायोंकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका
अन्तरकाल नहीं है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है ।

विशेषार्थ—प्रथमादि छह पृथिवियोंमें मिथ्यात्व, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी नरकसे

§ ४४. जहण्ण पयदं । इविहो गिहेसो—ओपेण भावेसेण य । आयेण मिच्छं—एकारसकं—जयभोक्कं—अहण्णमहण्णपदं—जत्थि अंतरं । सम्मं—सम्पापिं—जहं—जत्थि अंतरं । अन्नं—सहं—एगसं, चकं—उवहुपोमासपरियहा । मनेवाधुं—चरुहं—सहं—जत्थि अंतरं । अन्नहं—जहं—अंठाधुं, चकं—वेक्षावहिसागरो—देसूनाणि । सोमसंनं—अं—जत्थि अंतरं । अन्नं—जहण्णुहं—एमसपभो ।

§ ४५. आयेसेण खेरइएसु मिच्छं—तिग्णिवेदं—इस्स—रदि—अरदि—सोगालं जहं—जत्थि अंतरं । अन्नं—जहण्णुहं—एगसं । बारसकं—मय—इयुंका—जहण्णम—प्रकृतिर्वा है । इनका कमसे कम एक समय तक और अधिक से अधिक कुछ कम इच्छास सागर तक सत्त्व नहीं पाया जाता । तथा अवस्थानुबन्धीचतुष्क विसंयोजन प्रकृतिर्वा है, इसलिये इनका कमसे कम अन्तर्हृत् एक और अधिकसे अधिक कुछ कम इच्छास सागर कात तक सत्त्व नहीं पाया जाता इसलिये इनकी अनुकूल प्रदेशविभिन्न ब्रह्म्य और छद्म अन्तर एक कालप्रमाण का है । मन्वन्वासियोंसे लेकर सौ भौतिक तकके देशोंमें वह अन्तर प्रहमया बन जाती है, इसलिये इनमें सामान्य देशोंके समान जाननेकी सूचना की है । मात्र इनकी स्वस्थिति अलग अलग है, इसलिये इसमें कुछ कम इच्छास सागरके स्थानमें कुछ कम अपनी अपनी स्वस्थिति प्राप्त करनेकी सूचना की है । अनुश्रितासे लेकर आगेके सब देशोंमें उनके प्रथम समबमें सब प्रकृतियोंकी छद्म प्रदेशविभिन्न होती है इसलिये इनमें सब प्रकृतियोंकी छद्म और अनुकूल प्रदेशविभिन्न अन्तरअलग नियम किया है । वह भी अन्तरप्रहमया की है इसे स्थानमें रखकर आगेकी मार्गदर्शकोंमें वह बटित की जा सकती है, इसलिये इनमें इसी प्रकार से जानेकी सूचना की है ।

इस प्रकार छद्म अन्तरअलग समाप्त हुआ ।

§ ४६. जयन्त्यन्न प्रकरस है । निर्देरा दो प्रकारका है—ओष और आदेरा । ओषसे मिथ्यात्व म्याह कयाय और दो मोक्षार्थोंकी ब्रह्म्य और अजयप्य प्रदेशविभिन्न अन्तरअलग गयी है । सम्पत्त्व और सम्मिमिथ्यात्वकी जयप्य प्रदेशविभिन्न अन्तरअलग नहीं है । अजयप्य प्रदेशविभिन्न जयप्य अन्तर एक समय है और छद्म अन्तर कयाय पुनरास परिवर्तनप्रमाण है । अन्वन्तुबन्धीचतुष्ककी जयप्य प्रदेशविभिन्न अन्तरअलग नहीं है । अजयप्य प्रदेशविभिन्न जयप्य अन्तर अन्तर्हृत् है और छद्म अन्तर कुछ कम दो कपास सागरप्रमाण है । सोमसंनहनकी जयप्य प्रदेशविभिन्न अन्तरअलग नहीं है । अजयप्य प्रदेशविभिन्न ब्रह्म्य और छद्म अन्तर एक समय है ।

विशेषार्थ—ओषसे मिथ्यात्व आदि अकार्य प्रकृतियोंकी जयप्य प्रदेशविभिन्न अपनी अपनी जयप्य समब योग्य स्थानमें होती है, इसलिये इनकी जयप्य और अजयप्य प्रदेशविभिन्न अन्तरअलग नियम किया है । मात्र सम्पत्त्व और सम्मिमिथ्यात्व व्यस्तता प्रकृतिर्वा है और अन्वन्तुबन्धीचतुष्क विसंयोजन प्रकृतिर्वा है, इसलिये इनकी अजयप्य प्रदेशविभिन्न जयप्य और छद्म अन्तरअलग बन जानेसे काल अलगसे कालेय किया है । तथा सोमसंनहनकी जयप्य प्रदेशविभिन्न एक समय तक होनेके बाद भी अजयप्य प्रदेशविभिन्न होती है, इसलिये इसकी अजयप्य प्रदेशविभिन्न ब्रह्म्य और छद्म अन्तर एक समय का है ।

§ ४७. आदेरासे नादिकोंमें मिथ्यात्व तीन वेद इत्ये रति अर्पित और शोककी जयप्य प्रदेशविभिन्न अन्तरअलग गयी है । अजयप्य प्रदेशविभिन्न जयप्य और छद्म

जहण्ण० णत्थि अंतरं । सम्म०-सम्मामि० जह० णत्थि अंतरं । अज० जह० एगस०,
उक्क० तेत्तीसं सागरो० देसूणाणि । अणंताणु०चउक्क० जह० णत्थि अंतरं । अज०
जह० अंतोमु०, उक्क० तेत्तीसं सागरो० देसूणाणि । एवं सत्तमाए पुढवीए ।

§ ५१. पढमाए जाव छट्ठि त्ति भिन्ध०-चारसक०-इत्थि-णयुंस०-भय-दुगुंछ०
जहण्णजहण्ण० णत्थि अंतरं । सम्पत्त०-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क० जह० णत्थि
अंतरं । अज० ज० एगस० अंतोमु०, उक्क० सग-सगद्धिदीओ' देसूणाओ । पंच-
णोक० जह० णत्थि अंतरं । अज० जहण्णुक० एगस० ।

अन्तरकाल एक समय है । वारह कपाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य और अजघन्य प्रदेश-
विभक्तिका अन्तरकाल नहीं है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका
अन्तरकाल नहीं है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर
कुछ कम तेतीस सागर है । अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं
है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस
सागर है । इसी प्रकार सातवीं पृथिवीमें जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—नरक आदि चारो गतियोंमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्ति क्षपित
कर्मा शिक जीवके होनेके कारण प्रत्येकमें दो बार सम्भव नहीं है, इसलिए सर्वत्र इसके अन्तर-
कालका निषेध किया है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिके अन्तर कालका विचार करने पर नारकियोंमें
मिथ्यात्व आदि आठ प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्ति वहा उत्पन्न होनेके बाद अन्तर्मुहूर्त काल
जाने पर सम्भव है, इसलिए इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक
समय कहा है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व ये दो उद्भेलना प्रकृतियाँ हैं और अनन्तानुबन्धीचतुष्क
विसंयोजना प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल
वन जानेसे उसका अलगसे निर्देश किया है । इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिके दोनों प्रकारके
अन्तरकालको आगे भी इसी आधारसे घटित कर लेना चाहिए । मात्र सर्वत्र जघन्य अन्तरकाल
तो एक समान है । उत्कृष्ट अन्तर काल कुछ कम अपनी अपनी स्थितिप्रमाण प्राप्त होता है ।
केवल अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अपेक्षा तिर्यञ्चों और मनुष्योंमें वह कुछ कम तीन पल्य ही
कहना चाहिए । यहाँ वारह कपाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य प्रदेशविभक्ति भवके प्रथम समयमें
होती है, इसलिए इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिके अन्तरकालका भी निषेध किया है । सातवीं
पृथिवीमें यह परूपणा अधिकल वन जाती है, इसलिए उनमें सामान्य नारकियोंके समान
जाननेकी सूचना की है ।

§ ५१ प्रथमसे लेकर छठी पृथिवी तकके नारकियोंमें मिथ्यात्व, वारह कपाय, स्त्रीवेद,
नपुंसकवेद, भय और जुगुप्साकी जघन्य और अजघन्य प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है ।
सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं
है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर क्रमसे एक समय और अन्तर्मुहूर्त है तथा उत्कृष्ट
अन्तर कुछ कम अपनी-अपनी स्थितिप्रमाण है । पाँच नोकपायोंकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका
अन्तरकाल नहीं है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है ।

विशेषार्थ—प्रथमादि छह पृथिवियोंमें मिथ्यात्व, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी नरकसे

११२ तिरिकन्नाग्रीए तिरियसेसु मि०-बारसक०-इत्यि-गणुस०-भय
 दुरुष्ठाणं महणाभरणं० गत्वि अंतरं । सम्म०-सम्मामि० आर्षं । मणताणु० पद०
 मह० गत्वि अंतरं । मज ज० अंतोसु०, उक्क तिणि पसिदा० दसजाणि ।
 पंपणोक्क० मह० गत्वि अंतरं । मज० महणुक्क० एगस० । एवं पंचिदियतिरिक्क
 तियस्स । गवरि सम्म०-सम्मामि० मह० गत्वि अंतरं । मज० मह० एगस०, उक्क
 सगद्धिदी देसुवा । पंचिदियतिरिक्कमपत्थ० मिप्प० सम्म०-सम्मामि० सोलसक०-
 मय-दुरुष्ठा० महणाभरणं० गत्वि अंतरं । सतणोक्क० मह० गत्वि अंतरं । मज०
 महणुक्क० एगस० ।

तिरिक्कलेके अन्तिम समयमें और छेप की तरफमें उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें जपन्य प्रदेशविमर्षिक
 होती है, इसलिये इनकी अजपन्य प्रदेशविमर्षिके अन्तरकात्त नहीं है । तथा छेप
 पाँच मोकपायोकी जपन्य प्रदेशविमर्षिक स्वामी सामान्य नायकियों के समान है, इसलिये
 यहाँ इनकी अजपन्य प्रदेशविमर्षिक जपन्य और उक्क अन्तर एक समय सम्मन्न होनेसे एक
 एक अन्तरमात्र कहा है ।

११२ तिरिक्कगत्तिमें तिरिक्कोमें मिप्पात्त, बार कपाव स्वर्णव नपु सकवह भय और
 कुगुप्पाकी जपन्य और अजपन्य प्रदेशविमर्षिका अन्तरकात्त नहीं है । सम्मत्त्व और सम्म-
 मिप्पात्तका मज्ज ओपके समान है । अनन्तानुवर्णीकानुवर्णी जपन्य प्रदेशविमर्षिका अन्तरकात्त
 नहीं है । अजपन्य प्रदेशविमर्षिका जपन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उक्क अन्तर कुछ कम तीन
 पत्त्य है । पाँच नाकपायोकी जपन्य प्रदेशविमर्षिका अन्तरकात्त नहीं है । अजपन्य प्रदेशविमर्षि-
 का जपन्य और उक्क अन्तर एक समय है । इसी प्रकार पञ्च त्रिय तिरिक्कगत्तिमें दानना
 बाहिर । इतनी विशेषता है कि इनमें सम्मत्त्व और सम्मिमिप्पात्तकी जपन्य प्रदेशविमर्षिका
 अन्तरकात्त नहीं है । अजपन्य प्रदेशविमर्षिका जपन्य अन्तर एक समय है और उक्क अन्तर
 कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है । पञ्च त्रिय तिरिक्क अपरांतिकोंमें मिप्पात्त सम्मत्त्व,
 सम्मिमिप्पात्त, सोलस कपाव, भय और कुगुप्पाकी जपन्य और अजपन्य प्रदेशविमर्षिका
 अन्तरकात्त नहीं है । सात नाकपायोकी जपन्य प्रदेशविमर्षिका अन्तरकात्त नहीं है । अजपन्य
 प्रदेशविमर्षिका जपन्य और उक्क अन्तरकात्त एक समय है ।

विशेषार्थ तिरिक्कोमें मिप्पात्त कौवेव और नपुसकवेवह जपन्य प्रदेशात्तकमें तीन
 पत्त्यकी आयुके अन्तिम समयमें सम्मन्न है । बार कपाव, भय और कुगुप्पाका जपन्य प्रदेशात्तकमें
 तिरिक्क पर्याय पदका करनेके प्रथम समयमें सम्मन्न है, इसलिये इनका अजपन्य प्रदेशविमर्षिके
 अन्तरकात्त नियेय किया है । सम्मत्त्व और सम्मिमिप्पात्तका मज्ज ओपके समान यहाँ भी
 प्रतिष्ठित है । इसलिये इनका मज्ज ओपके समान दाननेकी स्तुति की है । अनन्तानुवर्णी-
 कानुवर्णी विसंकोचना प्रकृतियों हैं । इनका स्वयं कमसे कम अन्तर्मुहूर्त अन्तरात्त और अधिकसे
 अधिक कुछ कम तीन पत्त्य कात्त एक न रहे यह सम्मन्न है, इसलिये इनकी अजपन्य प्रदेश-
 विमर्षिका जपन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उक्क अन्तर कुछ कम तीन पत्त्य कहा है । पाँच
 नाकपायोकी जपन्य प्रदेशविमर्षिक तिरिक्कोमें उत्पन्न होनेके अन्तर्मुहूर्त बार प्रतिपत्त प्रकृतियोंके
 वन्द्यके अन्तिम समयमें होती है, इसलिये इनकी अजपन्य प्रदेशविमर्षिका जपन्य और उक्क
 अन्तरकात्त एक समय कहा है । पञ्च त्रियतिरिक्कगत्तिमें यह अन्तरकात्त इसी प्रकार बन जाता

§ ५३. मणुस-मणुसपज्जत्तएसु^१ मिच्छ०-एकारसक०-णवणोक० जहण्णाजहण्ण०
णत्थि अंतरं । सम्म०-सम्मामि० जह० णत्थि अंतरं । अज० जह० एगस०, उक्क०
तिण्णि पल्लिदोवमाणि पुण्वकोडिपुधत्तेण० भहियाणि । अणंताणु० च उक्क० जह० णत्थि
अंतरं । अज० जह० अंतोमु०, उक्क० तिण्णि पल्लिदो० देसूणाणि । लोभसंज० जह०
णत्थि अंतरं । अज० जहण्णुक० एगस० । एवं मणुस्सिणीणं । णवरि पुरिसवेद०
लोभसंजलणभगो । मणुसअपज्जत्ताणं पच्चिदियतिरिक्खअपज्जत्तभंगो ।

है, उसे सामान्य तिर्यञ्चोके समान जाननेकी सूचना की है। मात्र सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिके उत्कृष्ट अन्तरकालमें कुछ विशेषता है, इसलिए इनके अन्तरकालका निर्देश अलगसे किया है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य प्रदेशविभक्ति उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें होती है, इसलिए इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिके अन्तरकालका निषेध किया है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना होनेके बाद यहाँ पुनः इनका सत्त्व सम्भव नहीं है, इसलिए इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिके अन्तरकालका निषेध किया है। तथा शेष सात नोकपायोकी जघन्य प्रदेशविभक्ति उत्पन्न होनेके अन्तर्मुहूर्त बाद प्रतिपत्त प्रकृतियोंका बन्ध होनेके अन्तिम समयमें होती है, इसलिए इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय कहा है।

§ ५३ मनुष्य और मनुष्य पर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, ग्यारह कषाय और नौ नोकपायोंकी जघन्य और अजघन्य प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्य है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य है। लोभ संज्वलनकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है। इसी प्रकार मनुष्यनियोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें पुरुषवेदका भङ्ग लोभ-संज्वलनके समान है। मनुष्य अपर्याप्तकोंमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान भङ्ग है।

विशेषार्थ—सामान्य मनुष्य आदि तीनों प्रकारके मनुष्योंमें मिथ्यात्व, ग्यारह कषाय और नौ नोकपायोंकी जघन्य प्रदेशविभक्ति अपनी अपनी क्षणोंके अन्तिम समयमें होती है, इसलिए इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल सम्भव न होनेसे उसका निषेध किया है। मात्र मनुष्यनियोंमें पुरुषवेदकी जघन्य प्रदेशविभक्ति अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समयमें होती है, इसलिए यहाँ इसकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय सम्भव होनेसे वह उक्तप्रमाण कहा है। उक्त तीनों प्रकारके मनुष्योंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्य उद्वेलनाकी अपेक्षा बर जाता है, इसलिए वह उक्तप्रमाण कहा है। तथा अनन्तानुबन्धी-चतुष्ककी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य विसंयोजनाकी अपेक्षा बर जाता है, इसलिए वह उक्त प्रमाण कहा है। तथा संज्वलन लोभकी जघन्य प्रदेशविभक्ति यहाँ क्षणोंके अन्तर्मुहूर्त पूर्व होती है, इसलिए इसकी अजघन्य

१५२ तिरिक्त्तगदीए तिरिक्त्तेसु मिच्छ०-बारसक०-इति-गडुस०-भय-
 दुर्गुआनं भइण्णामइण्ण० गत्ति अंतरं । सम्म०-सम्मायि० आरं । अनंताणु० पवक०
 चह० गत्ति अंतरं । अम० न अतोसु , उक्क तिज्जि पडिहो० वेसूजानि ।
 पंपथोक्क० जह० गत्ति अंतरं । अक्क० अहण्णुक्क० एमस० । एवं पंपिदियतिरिक्त्त
 तियस्स । अवरि सम्म०-सम्मायि० जह० गत्ति अंतरं । जज० अह० एगस०, उक्क०
 समहिदी वेसूणा । पंपिदियतिरिक्त्तमपक्क० मिच्छ० सम्म०-सम्मायि० सोकसक०
 मय-दुर्गुआ० जहण्णामइण्ण० गत्ति अंतरं । सत्तथोक्क० सह० गत्ति अंतरं । जज०
 जहण्णुक्क० एगस० ।

विक्रान्तेके अन्तिम समयमें और शेष की मरहमें छपस होमेके प्रथम समयमें जपम्य प्रदेराबिमिच्छि
 होती है, इसलिये इनकी अजपम्य प्रदेराबिमिच्छि अन्तरकास निषेध किया है। तथा शेष
 पाँच लोकपावोंकी जपम्य प्रदेराबिमिच्छि स्वामी सामान्य मारुक्तियों के समान है, इसलिये
 यहाँ इनकी अजपम्य प्रदेराबिमिच्छि जपम्य और छट्ठ अन्तर एक समय सम्भव इन्तेसे यह
 कस प्रमाण कहा है।

१५२ तिरैज्जमिच्छे तिरैज्जोमिं मिच्छात्त, बारह कयाय एवीदे नपु सक्कव मय और
 सुगुप्पाकी जपम्य और अजपम्य प्रदेराबिमिच्छि अन्तरकास नहीं है। सम्बत्त और सम्म-
 मिच्छात्तका मत्त ओपके समान है। अतस्त्यगुबन्धीकमुप्पकी जपम्य प्रदेराबिमिच्छि अन्तरकास
 नहीं है। अजपम्य प्रदेराबिमिच्छि जपम्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और छट्ठ अन्तर कुछ कम तीन
 पत्त है। पाँच लोकपावोंकी जपम्य प्रदेराबिमिच्छि अन्तरकास नहीं है। अजपम्य प्रदेराबिमिच्छि
 का जपम्य और छट्ठ अन्तर एक समय है। इसी प्रकार पञ्च म्त्रिय तिरैज्जमिच्छे जानना
 चाहिए। "तनी विसेप्ता है कि इनमें सम्बत्त और सम्मिमिच्छात्तकी जपम्य प्रदेराबिमिच्छि
 अन्तरकास नहीं है। अजपम्य प्रदेराबिमिच्छि जपम्य अन्तर एक समय है और छट्ठ अन्तर
 कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है। पञ्च म्त्रिय तिरैज्ज अपवातकेमिं मिच्छात्त सम्बत्त,
 सम्मिमिच्छात्त, सत्तह कयाय मय और सुगुप्पाकी जपम्य और अजपम्य प्रदेराबिमिच्छि
 अन्तरकास नहीं है। सात लोकपावोंकी जपम्य प्रदेराबिमिच्छि अन्तरकास नहीं है। अजपम्य
 प्रदेराबिमिच्छि जपम्य और छट्ठ अन्तरकास एक समय है।

विशेषाये तिरैज्जोमिं मिच्छात्त, कीदे और मपुसदेहका जपम्य प्रदेरासत्तके तीन
 पत्तकी आयुके अन्तिम समयमें सम्भव है। बारह कयाय मय और सुगुप्पाका जपम्य प्रदेरासत्तके
 तिरैज्ज पर्याय म्त्रण करनेके प्रथम समयमें सम्भव है, इसलिये इनकी अजपम्य प्रदेराबिमिच्छि
 अन्तरकास निषेध किया है। सम्बत्त और सम्मिमिच्छात्तका मत्त ओपके समान यहाँ भी
 पठित हो जाता है, इसलिये इनका मत्त ओपके समान जाननकी सुचना की है। अतस्त्यगुबन्धी-
 कमुप्प विसेप्पोजना प्रहृतिपों हैं। इनका सत्त कमसे कम अन्तर्मुहूर्त कासत्त और अधिकसे
 अधिक कुछ कम तीन पत्त कास तक न रहे यह सम्भव है, इसलिये इनकी अजपम्य प्रदेरा-
 बिमिच्छि जपम्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और छट्ठ अन्तर कुछ कम तीन पत्त कहा है। पाँच
 लोकपावोंकी जपम्य प्रदेराबिमिच्छि तिरैज्जोमिं इत्यस इन्तेके अन्तर्मुहूर्त बाह प्रतिपद प्रहृतिपोंके
 पन्धके अन्तिम समयमें होती है, इसलिये इनकी अजपम्य प्रदेराबिमिच्छि जपम्य और छट्ठ
 अन्तरकास एक समय कहा है। पञ्च म्त्रियतिरैज्जमिच्छे यह अन्तरकास इसी प्रकार बन जाता

§ ५३. मणुस-मणुसपज्जत्तएसु^१ मिच्छ०-एकारसक०-णवणोक० जहणणाजहणण०
 णत्थि अंतरं । सम्म०-सम्मामि० जह० णत्थि अंतरं । अज० जह० एगस०, उक्क०
 तिण्णि पल्लिदोवमाणि पुण्वकोटिपुत्तेणवभहियाणि । अणंताणु०चउक्क० जह० णत्थि
 अंतरं । अज० जह० अंतोमु०, उक्क० तिण्णि पल्लिदो० देसूणाणि । लोभसंज० जह०
 णत्थि अंतरं । अज० जहण्णुक० एगस० । एवं मणुस्सिणीणं । णवरि पुरिसवेद०
 लोभसंजलणभगो । मणुसअपज्जत्ताणं पचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तभंगो ।

है, उसे सामान्य तिर्यञ्चोके समान जाननेकी सूचना की है। मात्र सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिके उत्कृष्ट अन्तरकालमें कुछ विशेषता है, इसलिए इनके अन्तरकालका निर्देश अलगसे किया है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य प्रदेशविभक्ति उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें होती है, इसलिए इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिके अन्तरकालका निषेध किया है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना होनेके बाद यहाँ पुनः इनका सत्त्व सम्भव नहीं है, इसलिए इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिके अन्तरकालका निषेध किया है। तथा शेष सात नोकपायोकी जघन्य प्रदेशविभक्ति उत्पन्न होनेके अन्तर्मुहूर्त बाद प्रतिपत्त प्रवृत्तियोंका वन्ध होनेके अन्तिम समयमें होती है, इसलिए इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय कहा है।

§ ५३ मनुष्य और मनुष्य पर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, ग्यारह कषाय और नौ नोकपायोंकी जघन्य और अजघन्य प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पत्य है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पत्य है। लोभ सज्जलनकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है। इसी प्रकार मनुष्यनिर्योमे जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें पुरुषवेदका भङ्ग लोभ-सज्जलनके समान है। मनुष्य अपर्याप्तकोंमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान भङ्ग है।

विशेषार्थ—सामान्य मनुष्य आदि तीनों प्रकारके मनुष्योंमें मिथ्यात्व, ग्यारह कषाय और नौ नोकपायोकी जघन्य प्रदेशविभक्ति अपनी अपनी क्षणोंके अन्तिम समयमें होती है, इसलिए इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल सम्भव न होनेसे उसका निषेध किया है। मात्र मनुष्यनिर्योमे पुरुषवेदकी जघन्य प्रदेशविभक्ति अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समयमें होती है, इसलिए यहाँ इसकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय सम्भव होनेसे वह उक्तप्रमाण कहा है। उक्त तीनों प्रकारके मनुष्योंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक तीन पत्य उद्वेलनाकी अपेक्षा वन जाता है, इसलिए वह उक्तप्रमाण कहा है। तथा अनन्तानुबन्धी-चतुष्ककी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पत्य विसंयोजनाकी अपेक्षा वन जाता है, इसलिए वह उक्त प्रमाण कहा है। तथा सज्जलन लोभकी जघन्य प्रदेशविभक्ति यहाँ क्षणोंके अन्तर्मुहूर्त पूर्व होती है, इसलिए इसकी अजघन्य

§ १४ देवगदीय देवसु मिच्छ०-भारसक०-इति०-गुप्त० मय-गुप्त०-महणा-
महण्य नित्य अंतरं । सम्म०-सम्पामि० मह० नित्य अंतरं । मज० मह०
एगस०, उच्च एकतीस सागरो० देसूणाणि । अर्धतापु० पचक० मह० नित्य
अंतरं । मज० मह० अर्धतापु०, उच्च० एकतीस सागरो० देसूणाणि । पुरिसवद
हस्त-रदि-भरदि-सोग० मह० नित्य अंतरं । मज० महण्युच्च० एगस० ।

§ १५ भवणादि भाव उपरिमगोबद्धा धि मिच्छ०-भारसक०-इति०-गुप्त०-
मय-गुप्त०-महणा-महण्य नित्य अंतरं । सम्म०-सम्पामि०-अर्धतापु पचक० मह०
नित्य अंतरं । मज० मह० एगस० अर्धतापु०, उच्च० सग-सगदिदीमो देसूणामो ।

प्रदेशविमर्शित्य जपन्य और उत्तुष्ट अन्तर एक समय कहा है । मनुष्य अपर्याप्तको मज
पञ्च मित्र विवेक अपर्याप्तको समाप्त है यह स्पष्ट ही है ।

§ ५४ देशादिमें देशोंमें मिथ्यात्व पाछ कपाय कीलेह, मनुष्यको जपन्य और
जुगुप्साकी जपन्य और अजपन्य प्रदेशविमर्शित्य अन्तरप्रसन्न नहीं है । सम्पत्त और
सम्पत्तिमिथ्यात्वकी जपन्य प्रदेशविमर्शित्य अन्तरप्रसन्न नहीं है । अजपन्य प्रदेशविमर्शित्य जपन्य
अन्तर एक समय है और उत्तुष्ट अन्तर कुछ कम इच्छीस सागर है । अनन्तानुबन्धीपुण्यकी
जपन्य प्रदेशविमर्शित्य अन्तरप्रसन्न नहीं है । अजपन्य प्रदेशविमर्शित्य जपन्य अन्तर अन्तमुक्त
है और उत्तुष्ट अन्तर कुछ कम इच्छीस सागर है । पुरुषोह हास्य, एति अरति और शोककी
जपन्य प्रदेशविमर्शित्य अन्तर नहीं है । अजपन्य प्रदेशविमर्शित्य जपन्य और उत्तुष्ट अन्तर
आप्त एक समान है ।

विशेषार्थ—देशोंमें मिथ्यात्व, कीलेह और मनुष्यको जपन्य प्रदेशविमर्शित्य मन्त्रके
प्रतिम समदर्भ तथा पाछ कपाय मय और जुगुप्साकी जपन्य प्रदेशविमर्शित्य मन्त्रप्रत्येक प्रपम
समयमें होती है, इसलिये नकी अजपन्य प्रदेशविमर्शित्यके अन्तरप्रसन्न निषेध किया है ।
सम्पत्त और सम्पत्तिमिथ्यात्वकी छलना होकर पुनः सत्तर तथा अनन्तानुबन्धीपुण्यकी
विस्तृताजना हास्य पुनः सत्त अन्तिम मन्त्रके तक ही सम्पत्त है । आगे सम्पत्त और
सम्पत्तिमिथ्यात्वकी छलना नहीं होती और अनन्तानुबन्धीपुण्यकी विस्तृताजना तो होती है
पर इन जीवोंका भीष गिरम सम्पत्त मही हानसे पुनः सत्त मही होता इसलिये इन द्वे
प्रतिपक्षों । अजपन्य प्रदेशविमर्शित्य उत्तुष्ट अन्तर कुछ कम इच्छीस सागर कहा है । इनमें
सम्पत्त और सम्पत्तिमिथ्यात्व अजपन्य प्रदेशविमर्शित्य जपन्य अन्तर एक समय और
अनन्तानुबन्धीपुण्यकी अजपन्य प्रदेशविमर्शित्य जपन्य अन्तर अन्तमुक्त है यह स्पष्ट ही है ।
को पुनः सत्त आदिकी जपन्य प्रदेशविमर्शित्य मन्त्रके आरम्भमें अन्तमुक्त काम जाने पर प्रतिपक्ष
प्रतिपक्ष के पन्थके प्रतिम समदर्भ होती है, इसलिये नकी अजपन्य प्रदेशविमर्शित्य जपन्य
और उत्तुष्ट अन्तर एक समय सम्पत्त हानसे वा तक काम प्रमाण कहा है ।

§ ५५ अनन्तानुबन्धी सत्त हरिम मन्त्रके तकके देशोंमें मिथ्यात्व पाछ कपाय,
मन्त्र ननुमत्त मय और जुगुप्साकी जपन्य और अजपन्य प्रदेशविमर्शित्य अन्तरप्रसन्न मही
है । सम्पत्त सम्पत्तिमिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीपुण्यकी जपन्य प्रदेशविमर्शित्य अन्तरप्रसन्न
नहीं है । अजपन्य प्रदेशविमर्शित्य जपन्य अन्तर कमस एक समय और अन्तमुक्त है तथा

पुरिसवेद-हस्स-रदि-अरदि-सोगाणं जह० णत्थि अंतर । अज० जहण्णुक्क० एगस० ।

१ ५६. अणुहिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धि ति अट्ठावीस पयडीणं जहण्णाजहण्ण० णत्थि अंतर । जत्थि हस्स-रदि-अरदि-सोगाणमाणदभगो । एव जाव अणाहारए ति णीदे अंतर समत्तं होदि ।

❀ **णाणाजीवेहि भगविचओ दुविहो—जहण्णुक्कस्सभेदेहि । अट्ठपद कादूण सव्वक्कस्माणं णेदव्वो ।**

§ ५७. एदस्स सुत्तस्स देसापासियस्स उच्चारणाहरियवक्खाण परुवेप्पो । णाणाजीवेहि भगविचओ दुविहो—जहण्णओ उक्कस्सओ चेदि । उक्कस्सए पयदं । तत्थ अट्ठपद—अट्ठावीसं पयडीणं जे उक्कस्सपदेस्सस्स विहत्तिया ते अणुक्कस्सपदेस्सस्स अविहत्तिया । जे अणुक्कस्सपदेस्सस्स विहत्तिया ते उक्कस्सपदेस्सस्स अविहत्तिया । विहत्तिएहि पयदं, अविहत्तिएहि अव्ववहारो । एदेण

उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है । पुरुषवेद, हास्य, रति, अरति और शोककी जघन्य प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है ।

विशेषार्थ— सामान्य देवोंमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्तिके अन्तरकालको जिसप्रकार घटित करके बतला आये हैं उसी प्रकार यहाँ पर भी घटित कर लेना चाहिए ।

§ ५६ अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है । इतनी विशेषता है कि हास्य, रति, अरति और शोक प्रकृतिका भङ्ग आनन्द कल्पके समान है । इस प्रकार अनाहारक मार्गणा तक ले जानेपर अन्तरकाल समाप्त होता है ।

विशेषार्थ— मिथ्यात्व आदि कुछ प्रकृतियोंकी भवके अन्तिम समयमें और कुछकी भवके प्रथम समयमें जघन्य प्रदेशविभक्ति होती है, इसलिए इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका अन्तरकाल सम्भव नहीं होनेसे उसका निषेध किया है । मात्र हास्य आदि चार प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्ति पर्यायग्रहणके अन्तर्मुहूर्त वाद होती है, इसलिए इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय प्राप्त होनेसे वह उक्त कालप्रमाण कहा है ।

इस प्रकार अन्तरकाल समाप्त हुआ ।

❀ **नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्टके भेदसे भङ्गविचय दो प्रकारका है । सो इस विषयमें अर्थपद करके सब कर्मोंका ले जाना चाहिए ।**

§ ५७. यह सूत्र देशामर्पक है । इसके उच्चारणाचार्य कृत व्याख्यानका कथन करते हैं— नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचय दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । उसमें यह अर्थपद है—जो अट्ठाईस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तियाले जीव हैं वे उनकी अनुत्कृष्ट प्रदेश विभक्तियाले हैं । तथा जो अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तियाले जीव हैं वे उत्कृष्ट प्रदेश विभक्तियाले हैं । यहाँ विभक्तियाले जीवोंका प्रकरण है, क्योंकि विभक्तियालोंका व्यवहार नहीं

मदपदण बुविहो बिहसेतो—ओघण आदेसेण । तस्य ओघेण मडावीसं पयवीनं
 चकस्सपदसस्स सिया सम्भे जीवा मबिहत्थिया १, सिया मबिहत्थिया च विहत्थिमा च २,
 सिया मबिहत्थिया विहत्थिया च ३ । अणुचकस्सपदेसस्स सिया सम्भे जीवा बिहत्थिया १,
 सिया विहत्थिया च मबिहत्थिमो च २, सिया विहत्थिया च मबिहत्थिया च ३ । एवं
 सम्भणारइय-सम्भतिरिन्स-अणुसत्थिय-सम्भद्वं ति । अणुसमपञ्च० मडावीसं पयवीनं
 चकस्सपदसविहत्थिपार्णं मबिहत्थिएहि सह मद्ध भंग्ग । अणुचकस्सपदेसविहत्थिपार्णं पि
 मबिहत्थिएहि सह मद्ध भंग्ग पसुव्वा । एवं णेद्वम्भं भाव अणाहारि ति ।

ह । इस अर्थपरक अनुसार निर्देश हा प्रकरका है—ओघ और आवेरा । ओघसे कराबिन् सव
 जीव अणुसम प्रवृत्तियोंकी उत्पत्ति प्रदेश-अविमर्शितासं हैं १ । कराबिन् अविमर्शितासे बहुत जीव
 हैं और विमर्शिताया एक जीव ह २ । कराबिन् अविमर्शितासे बहुत जीव हैं और विमर्शितासे
 बहुत जीव हैं । अनुत्पत्ति प्रदेशोंकी अपक्षा कराबिन् सव जीव विमर्शितासे हैं १ । कराबिन् बहुत
 जीव विमर्शितासे हैं और एक जीव अविमर्शितासे है २ । कराबिन् बहुत जीव विमर्शितासे
 हैं और बहुत जीव अविमर्शितासे हैं ३ । इसी प्रकार सव नारकी सब तिर्यक्ष, मनुष्यादिक और
 सब इषोंमें जानना चाहिए । मनुष्य अपवातक जीवोंमें अङ्गुलस प्रवृत्तियोंकी उत्पत्ति प्रदेश-
 विमर्शितासं जीवोंके अविमर्शितासे जीवोंके साथ आठ मद्र होते हैं । तथा अनुत्पत्ति प्रदेश-
 विमर्शितासं जीवोंके भी अविमर्शितासं जीवोंके साथ आठ मद्र करने चाहिए । इस प्रकार
 अन्तारक माग्या तक स जाना चाहिए ।

विद्यापार्य—यहां अङ्गुलस प्रवृत्तियोंके उत्पत्ति प्रदेशविमर्शितासे और अविमर्शितासे
 तथा अनुत्पत्ति प्रदेशविमर्शितासे और अविमर्शितासं जीवोंके मद्र प्रकर फिर बार गतिधर्मों से
 बतनाय गय है । उत्पत्ति प्रदेशविमर्शितासे उत्पत्ति मागसे होनी ह । वह सवा समम मही ह, इसलिये
 कराबिन् एक ही जीव उत्पत्ति प्रदेशविमर्शितासे मही होता कराबिन् एक जीव उत्पत्ति प्रदेश-
 विमर्शितासे होता है और कराबिन् माना जीव उत्पत्ति प्रदेशविमर्शितासे होते हैं, इसलिये उत्पत्ति
 प्रदेशविमर्शितासे अपक्षा तीन मद्र हात है । मद्र मूलमें ही यह है । अनुत्पत्ति प्रदेशविमर्शितासे
 अपक्षा विचार करने पर भी तीन मद्र ही प्राप्त होते हैं, क्योंकि कराबिन् सव जीव अनुत्पत्ति
 प्रदेशविमर्शितासे धारक हान हैं कराबिन् सव सब जीव अनुत्पत्ति प्रदेशविमर्शितासे धारक होते हैं और
 एक जीव अनुत्पत्ति प्रदेशविमर्शितासे धारक नहीं होता और कराबिन् माना जीव अनुत्पत्ति प्रदेश-
 विमर्शितासे धारक हात हैं और नाना जीव अनुत्पत्ति प्रदेशविमर्शितासे धारक नहीं हात, इसलिये इस
 अपक्षाम भी तीन मद्र बन जात हैं । लक्ष्यपक्षाम मनुष्योंका हाइटर गति मागौलाक अम्भ सब
 मर्गोंमें यह आप प्रकृष्टा अपिचर चरित हा जाती है, इसलिये इसमें आपक समान जाननकी
 मूल्यता ही ह । मात्र मनुष्य अपवातक यह स्वम्भर माग्या है । इसलिये इसमें उत्पत्ति और अनु-
 त्पत्ति दोनों प्रदेशविमर्शितासेके अपवन-अपवन अविमर्शितानोंके साथ एक और नाना जीवोंकी
 अपक्षा आठ-आठ मद्र बन जानम इनका मर्चि धारणस किया ह । मर्गोंका यह पत्रति अन्तारक
 माग्यातक अपवन-अपवनी विग्यताके स्वय पठित हा जाती ह, इसलिये अन्तारक माग्यातक
 तक प्रकृष्टाक समान जाननका मूल्यता ही ह ।

इस प्रकार माना जीवोंकी अपक्षा उत्पत्ति मद्रविचर समान हुआ ।

§ ५८, जहणणए पयदं । तं चेव अट्टपदं । णवरि जहणणमजहण्णं ति भाणिदव्वं । अट्टावीसं पयडीणं जहणणपदेसविहत्तियाणं तिण्णि भंगा । अजहणणपदेसविहत्तियाणं पि तिण्णि चेव भंगा । एवं सव्वणोरइय-सव्वतिरिक्ख-मणुसतिय-सव्वदेवा ति । मणुसअपज्ज० जहण्णाजहण्ण० अट्ट भंगा । एवं णेदव्वं जाव अणाहारि ति ।

एवं णाणाजीवेहि भंगविचओ समत्तो ।

§ ५९, संपहि एदेण अहियारेण सूचिदसेसाहियाराणमुच्चारणं भणिस्सामो । भागाभागो दुविहो-जहण्णओ उक्कस्सओ चेदि । उक्कस्से पयदं । दुविहो णिदेसो-ओघेण आदेसेण य । ओघेण छव्वीसं पयडीणमुक्क० पदेसविहत्तिया जीवा सव्व-जीवाणं केव० ? अणंतभागो । अणुक्क० सव्वजीवाणं केव० ? अणंतं भागा । सम्म०-सम्मामि० उक्क० पदेसविहत्ति० सव्वजी० के० ? असंखेज्जदिभागो । अणुक्क० सव्वजी० के० ? असंखे० भागा । एवं तिरिक्खोघं ।

§ ५८ जघन्यका प्रकरण है वही अर्थपद है । इतनी विशेषता है कि उत्कृष्ट और अनुत्कृष्टके स्थानमें जघन्य और अजघन्य कहना चाहिए । अट्टाईस प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंके तीन भङ्ग होते हैं । अजघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंके भी तीन भङ्ग होते हैं । इसी प्रकार सब नारकी, सब तिर्यञ्च, मनुष्यत्रिक और सब देवोंमें जानना चाहिए मनुष्य अपर्याप्तकोंमें जघन्य और अजघन्य प्रदेशविभक्तिकी अपेक्षा आठ आठ भङ्ग होते हैं । इस प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—पहले उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंकी अपेक्षा ओघसे और चारों गतियोंमें जहाँ जितने भङ्ग सम्भव हैं वे घटित करके बतला आये हैं उसी प्रकार यहाँ पर भी घटित कर लेने चाहिए । मात्र यहाँ उत्कृष्ट और अनुत्कृष्टके स्थानमें जघन्य और अजघन्य कहना चाहिए ।

इस प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचय समाप्त हुआ ।

§ ५९. अब इस अधिकारसे सूचित हुए शेष अधिकारोंकी उच्चारणाका कथन करते हैं । भागाभाग दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे छव्वीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? अनन्तवें भागप्रमाण हैं । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? अनन्त बहुभागप्रमाण हैं । सम्यक्त्व और सम्यग्निध्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं । असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं । इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्चोंमें जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—मोहनीयकी सत्तासे युक्त कुल जीव राशि अनन्तानन्त है । उसमेंसे ओघसे इक्कीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव अधिकसे अधिक असंख्यात हो सकते हैं । चार सज्जलन और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव अधिकसे अधिक संख्यात हो सकते हैं । शेष सब जीव अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले होते हैं, इसलिए यहाँ छव्वीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट

॥ ६० ॥ आदत्तेण णरहएसु अट्ठावीसं पयडीणं उह० सम्बन्धी० केव० ? असंस्व० भागा । मणुक्क० असंस्वेज्जा भागा । एवं सम्बन्धिरय-सम्बन्धिविद्विपठिरिक्त्त-मणुस०-मणुममपञ्च०-वेव भवणादि भाव भवराइदा ति वसत्त्वं । मणुसपञ्च मणुस्तिगि-सम्बन्धसिद्धेसु अट्ठावीसं पयडीणमुक्क पदे० सम्बन्धी० केव० ? संस्वे भागो । मणुक्क संस्वेज्जा भागा । एवं जेदम्भं भाव अणाहारि ति ।

॥ ६१ ॥ जहण्णए पयदं । जहण्णए उहस्समर्गमा । जवरि जहण्णामहण्णं ति भागिदम्भं । एवं जेदम्भं भाव अणाहारि ति ।

एवं भागाभागो सप्ततो ।

॥ ६२ ॥ परिमाणं दुविहं—जहण्णमुक्त्तं च । उहस्से पयदं । दुविहो भिन्न सो-ओपग आदत्तेण च । ओपेण मिच्छ०-वारसक्क०-महणोक्क उहस्सपदेसविद्विपया

प्रदेशविमर्शिताले जीव अनन्तत्वे मगप्रमाण और अनुत्तम प्रदेशविमर्शिताले जीव अनन्त बहुभागप्रमाण पद हैं । सम्बन्ध और सम्बन्धिम्यावकी सत्ताबले ही इत जीव असंख्यात होते हैं । उनमें भी छहप्र प्रदेशविमर्शिताले असंख्यातवें भागप्रमाण हो सकते हैं । शेष अनुत्तम प्रदेशविमर्शिताले होते हैं इसलिये इन दोनों प्रकृतियोंकी अपेक्षा उहस्स प्रदेशविमर्शिताले असंख्यातवें मगप्रमाण और अनुत्तम प्रदेशविमर्शिताले असंख्यात बहुभागप्रमाण पद हैं । सामान्य विवेक अनन्तप्रमाण है, इसलिये इस मार्गस्यार्थ ओप प्रकृत्या वन जानेसे उनमें ओपके समान जाननकी सूचना की है ।

॥ ६३ ॥ आदेशाने नापकिमोने अट्ठाईस प्रकृतियोंकी छहप्र प्रदेशविमर्शिताले जीव सब जीवोंके कितने मगप्रमाण हैं ? असंख्यातवें मगप्रमाण है । अनुत्तम प्रदेशविमर्शिताले जीव असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं । इसी प्रकार सब नारकी सब पञ्च त्रिय विपैज्ज, मणुप्प, मणुप्प अपयान्, वव और मक्कवासिजोसे केचर अपराहित विमात एकके वेचोमें कथन करना चाहिए । मणुप्प पमात, मणुप्पिती और सर्वाभेस्तिष्ठिक देवोमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी छहप्र प्रदेशविमर्शिताले जीव सब जीवोंके कितने मगप्रमाण हैं ? संख्यातवें मगप्रमाण हैं । अनुत्तम प्रदेशविमर्शिताले जीव बहुभागप्रमाण हैं । इसी प्रकार अनाहारक मार्गस्यार्थ तक से जाना चाहिए ।

विशेषार्थ—यहाँ त्रिन मार्गस्यार्थोंकी संख्या असंख्यात है उनमें सब प्रकृतियोंके छहप्र प्रदेशविमर्शिताले जीव असंख्यातवें मगप्रमाण और अनुत्तम प्रदेशविमर्शिताले जीव असंख्यात बहुभागप्रमाण पदज्ञाप हैं । तथा त्रिन मार्गस्यार्थोंका परिमाण संख्यात है उनमें छहप्र प्रदेशविमर्शिताले ज व संख्यातवें मगप्रमाण और अनुत्तम प्रदेशविमर्शिताले जीव संख्यात बहुभागप्रमाण पदज्ञाप हैं । शेष कथन स्पष्ट ही है ।

॥ ६४ ॥ जपम्भम प्रकरण है । जपम्भम मत्र उहस्सके समान है । इतनी विशेषता है कि उहस्स और अनुत्तमक स्थानमें जपम्भ और अजपम्भ ऐसा कहा चाहिए । इसी प्रकार अनाहारक मार्गस्यार्थ तक से जाना चाहिए ।

इस प्रकार भागाभाग समाप्त हुआ ।

॥ ६५ ॥ परिमाण हो प्रकरण है—जपम्भ और उहस्स । उहस्सम प्रकरण है । निर्देश हो प्रकरण है—ओप और आदेश । ओपसे मिच्छाल बाह कयाव और आठ मोकपायोंकी

केतिया ? असंखेज्जा । अणुक० पदे० केत्ति० ? अणंता । सम्मत्त०-सम्मामि० उक्क० पदेसवि० केत्ति० ? संखेज्जा । अणुक० केत्ति० ? असंखेज्जा । चदुसंज०-पुरिस० उक्क० पदे० केत्ति० ? संखेज्जा । अणुक० पदे० केत्ति० ? अणंता ।

§ ६३. आदेसेण णिरय० सत्तावीसं पयडीणमुक्क०-अणुक० पदे० केत्ति० ? असंखेज्जा । सम्मत्त० उक्क० पदे० के० ? संखेज्जा । अणुक० पदे० केत्ति० ? असंखेज्जा । एवं पढमाए । विट्ठियादि जाव सत्तमि त्ति अट्ठावीसं पयडीणमुक्कस्स०-अणुकस्स० केत्ति० ? असंखेज्जा ।

§ ६४. तिरिक्खवगईए तिरिक्खेसु छव्वीसं पयडीणं उक्क० पदे० केत्ति० ? असंखेज्जा । अणुक० केत्ति० ? अणता । सम्मत्त० उक्क० पदे० केत्ति० ? संखेज्जा । अणुक० केत्ति० ? असंखेज्जा । सम्मामि० उक्कस्साणुक० केत्ति० ? असंखेज्जा ।

उत्कृष्ट विभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । चार संज्वलन और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । तथा अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं ।

विशेषार्थ — ओघसे चार संज्वलन और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति क्षपकश्रेणिये होती है, इसलिए इनकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका परिमाण संख्यात कहा है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति क्षायिक सम्यग्दर्शनकी प्राप्तिके समय होती है, इसलिए इनकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका परिमाण भी संख्यात कहा है । शेष कथना सुगम है ।

§ ६३. आदेशसे नारकियोमे सत्ताईस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । इसी प्रकार पहली पृथिवीमें जानना चाहिए । दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं ।

विशेषार्थ—यहां सामान्यसे नारकियोंमें और पहली पृथिवीके नारकियोंमें कृतकृत्य-वेदकसम्यग्दृष्टि उत्पन्न होते हैं और इनका अधिकसे अधिक परिमाण संख्यात होता है, इसलिए इनमें सम्यक्त्व प्रकृतिकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका परिमाण संख्यात कहा है । शेष कथन सुगम है । इसी प्रकार आगे भी अपने अपने परिमाण और दूसरी विशेषताओंको जान कर सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका परिमाण ले आना चाहिए । उल्लेखनीय विशेषता न होनेसे हम अलग अलग स्पष्टीकरण नहीं कर रहे हैं ।

§ ६४. तिर्यञ्चगतिमें तिर्यञ्चोंमें छव्वीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं ? अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीव कितने हैं ?

पंचिदियतिरिक्त्वा—पंचि० तिरिक्त्वापञ्चत्वात् पञ्चमपुहभिर्मनो । पंचिदियतिरिक्त्वा-
भोभिर्भीर्ण विद्रियपुहभिर्मनो । पंचिदियतिरिक्त्वापञ्च० अट्टावीसं पयडीणमुहस्ता
पुह० पदे० केति० । असंसेज्या । एवं मनुसमपञ्च० मयय०-बाण०-मोदिसि पति ।

१३२ मनुसमदि० मिच्छ०-वारसक०-अन्धोक्त० उक्तस्तानुह० पदे०
मससेज्या । सम्प०-सम्पामि०-अदुसंन०-तिष्णिगदाणमुह० केति० । संसेज्या ।
अनुह० पदे० वि० केति० । असंसेज्या । मनुसपञ्चत्त०-मनुसिनीसु सम्पदसिद्धि०
अट्टावीसं पयडीणमुह०-अनुह० पदे० केति० । संसेज्या ।

१३३ देवगदीप देवसु सोहम्मादि जाय सहस्तारो पति पञ्चमपुहभिर्मनो ।
भाणदादि जाय अचराहो पति अट्टावीसं पयडीणं उह० पद० वि० केति० । संसेज्या ।
अनुह० केति० । असंसेज्या । एवं नेद्व्यं जाय अणाहारि पति ।

असंख्यात है । पञ्च मित्र तिर्यञ्च और पञ्च मित्र तिर्यञ्च पर्याप्तर्क्षमें पड़ती प्रविर्भीके समान
मज्ञ है । पञ्च मित्र तिर्यञ्च योनिभियोंने वृक्षी प्रविर्भीके समान मज्ञ है । पञ्च मित्र तिर्यञ्च
अपर्याप्तर्क्षमें अद्व्यर्क्ष मष्टियोंकी ऊह्य और अनुह्य प्रदेराभिर्मिच्छासे जीव कितने हैं ?
असंख्यात है । इसी प्रकार मनुष्य अपर्णा, मयनवासी अन्ध और अयोतिषी देवोंमें आनय
चाहिए ।

विशेषार्थ—पञ्च मित्र तिर्यञ्च और पञ्च मित्र तिर्यञ्च पर्याप्तर्क्षमें वृक्षप्रदेवकसम्पन्नादि
जीव उत्पन्न होते हैं, इसलिये इनमें पड़ती प्रविर्भीके समान मज्ञ बन जानेसे इनके समान
आनयेकी सूचना की है । परन्तु पञ्च मित्र तिर्यञ्च बाबिनी वीधोंमें वृक्षप्रदेवकसम्पन्नादि जीव
नहीं उत्पन्न होय, इसलिये इनमें वृक्षी प्रविर्भीके समान मज्ञ बन जानेसे इनके समान आनयेकी
सूचना की है । सेप कमम स्पष्ट ही है ।

१३४ मनुष्यगतिमें मनुष्योंमें मिच्छात्वा, बाण कषाप और अहं मोक्षपापोंकी ऊह्य
और अनुह्य प्रदेराभिर्मिच्छासे जीव कितने हैं ? असंख्यात है । सम्पत्त्व सम्पमिच्छात्वा,
वार संस्त्रात और तीन वेदोंकी ऊह्य प्रदेराभिर्मिच्छासे जीव कितने हैं ? संख्यात है । अनु-
ह्य प्रदेराभिर्मिच्छासे जीव कितने हैं ? असंख्यात है । मनुष्यपर्याप्त, मनुष्यनी और
सर्वाभिर्मिच्छाके देवोंमें अद्व्यर्क्ष मष्टियोंकी ऊह्य और अनुह्य प्रदेराभिर्मिच्छासे जीव कितने
हैं ? संख्यात है ।

१३५ देवगतिमें देवोंमें तथा सौवर्ग कस्यसे लेकर अहंकार कस्य तकके देवोंमें पड़ती
प्रविर्भीके समान मज्ञ है । आनय कस्यसे लेकर अपपञ्चित विभाव तकके देवोंमें अद्व्यर्क्ष
मष्टियोंकी ऊह्य प्रदेराभिर्मिच्छासे जीव कितने हैं ? संख्यात है । अनुह्य प्रदेराभिर्मिच्छा-
से जीव कितने हैं ? असंख्यात है । इस प्रकार अबाधारक मार्गका एक ले जाना चाहिए ।

विशेषार्थ—बाणके कस्य तक तिर्यञ्च की मरकर उत्पन्न होते हैं इसलिये यहाँ तकके
देवोंमें पड़ती प्रविर्भीके समान मज्ञ बन जानेसे इनके समान आनये की सूचना की है । तथा
आगेके देवोंमें मनुष्य ही मर कर उत्पन्न होते हैं इसलिये अद्व्यर्क्ष मष्टियोंकी ऊह्य प्रदेरा-
भिर्मिच्छासे जीवोंका परिमाण संख्यात प्राप्त होनेसे यहाँ अहं उत्पन्नात् कहा है । सेप कमम
सुगम है ।

§ ६७. जहणए पयदं । दुविहो णिहो सो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण छव्वीसं पयडीणं जह० केत्ति० ? संखेज्जा । अज० केत्ति० ? अणंता । सम्म०-सम्मामि० जह० पदे०वि० केत्ति० ? संखेज्जा । अज० के० ? असंखेज्जा । एवं तिरिक्खाणं ।

§ ६८. आदेसेण णेरइएसु अट्ठावीसं पयडीणं जह० के० ? संखेज्जा । अज० केत्ति० ? असंखेज्जा । एवं सव्वणेरइय-सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-मणुस-मणुसअपज्ज०-देव-भवणादि जाव अवराइदो त्ति । मणुसपज्ज०-मणुसिणी-सव्वट्ठसिद्धि० सव्वपदा० के० ? संखेज्जा । एवं णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति ।

§ ६७. जघन्यका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश—ओघसे छव्वीस प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । अजघन्य प्रदेश-विभक्तिवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य प्रदेश-विभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । अजघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । इसी प्रकार तिर्यच्चोमे जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—छव्वीस प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्ति क्षणके समय यथायोग्य स्थानमें होती है । यतः इनकी क्षण करणवाले जीव संख्यात होते हैं, अतः इनकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका परिमाण संख्यात कहा है । इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीव अनन्त होते हैं यह स्पष्ट ही है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य प्रदेशविभक्ति अन्य विशेषताओंके रहते हुए अपनी अपनी उद्वेलनाके अन्तिम समयमें होती है । यतः ये जीव भी संख्यात ही होते हैं, अतः इनकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका परिमाण संख्यात कहा है । इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीव असंख्यात होते हैं यह स्पष्ट ही है । सामान्यसे तिर्यच्च अनन्त होते हैं, इसलिए उनमें यह ओघप्ररूपणा वन जाती है, अतः उनमें ओघके समान जाननेकी सूचना की है । मात्र उनमें स्वामित्वका विचार कर परिमाण घटित करना चाहिए ।

§ ६८ आदेशसे नारकियोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । अजघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । इसी प्रकार सब नारकी, सब पञ्चेन्द्रिय तिर्यच्च, मनुष्य, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव और भवनवासियोंसे लेकर अपराजित विमान तकके देवो जानना चाहिए । मनुष्य पर्याप्त, मनुष्यिनी और सर्वार्थ-सिद्धिके देवोंमें सब प्रकृतियोंके सब पदवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । इस प्रकार अनाहारक मार्गणा तक ले जाना चाहिए ।

विशेषार्थ—सामान्य नारकियोंसे लेकर पूर्वोक्त सब मार्गणाओंमें संख्यात जीव ही सब प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्ति करते हैं, इसलिए सर्वत्र अट्ठाईस प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका परिमाण संख्यात कहा है । तथा मनुष्य पर्याप्त आदि तीन मार्गणाओंका परिमाण संख्यात है और शेषका असंख्यात है, इसलिए इनमें अपने अपने परिमाणके अनुसार अट्ठाईस प्रकृतियोंकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवों का परिमाण कहा है ।

इस प्रकार परिमाण समाप्त हुआ ।

॥ ६६. सत्ताशुगमा दुविहा—अङ्गणमो उक्कस्समा य । उक्कस्से पयई ।
दुविहा निरसो—भापण आदसेण य । भापण द्दम्भीसं पयडीणमुक्क० पदे०
विहत्तिपा केवटि म्वसे ? सोग० मसंसं०भाग । अनुक्क० फव० ? सम्बलागे । सम्म०
सम्मापि० उक्क०-अणुक्क० पदे० फव० ? साग० मसंसं०भाग । एव विरिक्कलान् ।

॥ ७०. आदसेण गेरहएसु अट्ठापीसं पयडीणमुक्क०-अणुक्क० साग० मसंसे०-
भाग । एवं सम्मभेरहए-सम्भरपिदिपतिरिक्कल-सम्भमणुस-सम्भदेवा सि । एवं केदम्भं
नान भगाहारि सि ।

॥ ७१. अङ्गणप पयइ । दुविहा विहसा—भापण आदसेण य । भापेण
सम्भपयडीणं जह०-भन० उक्कस्साणुक्कस्सपद०भंगो । एवं सम्भमगणासु केदम्भं ।

॥ ६६. चेत्ताशुगमा हा प्रभारका हे—उपम्य और उक्क०। उक्क०का प्रकरण हे। निर्देष्टा हो
प्रभारका हे—भाप और भादेरा। भापसे द्दम्भीस प्रतियोगी उक्क० प्रदेशविभक्तिपा
जीबोंका शिना फर हे। साकके अर्धव्यातर्भे भागप्रमाण फेर हे। अनुक्क० प्रदेशविभक्तिपाते
जीबोंका सब साक्ष्यमाण फेर हे। सम्भवत और सम्ममिम्यात्वाभी उक्क० और अनुक्क०
प्रदेशविभक्तिपात जीबोंका शिना फर हे। साकके अर्धव्यातर्भे भागप्रमाण फेर हे।
इसी प्रकार निवेष्टांमें जानना चाहिये।

विशेषार्थ—द्दम्भीस प्रतियोगी उक्क० प्रदेशविभक्ति छठी पञ्च शिख जीब करते हे
आर उनका फर साकके अर्धव्यातर्भे भागप्रमाण हे, इत्यति पदा भापसे उक्क प्रतियोगी
उक्क० प्रदेशविभक्तिपात जीबोंका फर साकके अर्धव्यातर्भे भागप्रमाण कहा हे। इनकी अनुक्क०
प्रदेशविभक्ति उक्क प्रतियोगी सणधान गुण सब जीबके सम्भव हे और उनका फर सब साक है,
इत्यति पदा उक्क प्रतियोगी अनुक्क० प्रदेशविभक्तिपात जीबोंका सब साक्ष्यमाण फर कहा हे।
सम्भवत और सम्ममिम्यात्वाभी उक्क० और अनुक्क० प्रदेशविभक्तिपात जीबोंका फर साकके
अर्धव्यातर्भे भागप्रमाण हे पर स्पष्ट ही हे। शमाग्य तिवश्यांमें य० फर धरित हा जानते
उनमें आपक समान जाननेका मूलना की हे।

॥ ७०. भादेरासे मापिक्यामें अट्ठास प्रतियोगी उक्क० और अनुक्क० प्रदेशविभक्तिपात
जीबन साकके अर व्यातर्भे भागप्रमाण फेर स्पष्टी किया हे। इसी प्रकार सब मारकी सब
पञ्च शिख निवेष्टा सब अनुक्क और सब द्दम्भीमें जानना चाहिये। इस प्रकार अभाहारक मार्गका
तक न जाना चाहिये।

विशेषार्थ—दुर्वीक शमाग्य मार्गकी आदि उक्क मार्गकाभी फर ही साकके
अर्धव्यातर्भे भागप्रमाण हे इत्यति इनमें सब प्रतियोगी उक्क० और अनुक्क० प्रदेश-
विभक्तिपात जीबोंका फर साकके अर्धव्यातर्भे भागप्रमाण कहा हे। अभा अभाहारक मार्गका
तक इसी प्रकार विचार फर फर धरित किया या तक्क हे इत्यति इन मार्गकाभीमें उक्क
फरक समान जाननेकी मूलना की हे।

॥ ७१. उपपक्क प्रकरण हे। निर्देष्टा हा प्रभारका हे—भाप और भादेरा। भापसे सब
प्रतियोगी उक्क० और अनुक्क० प्रदेशविभक्तिपात जीबोंका फर उक्क० और अनुक्क० प्रदेश-
विभक्तिपात जीबोंके शिना हे। इसी प्रकार सब मार्गकाभीमें न जाना चाहिये।

विशेषार्थ—मारेव सब प्रतियोगी उपम्य प्रदेशविभक्ति विभक्तिपात हातना

§ ७२. पोसणं दुविहं—जहण्णमुक्कस्सं च । उक्कस्से पयदं । दुविहो णि०-
ओघेण आदेसेण य । ओघेण छ्वीस पयडीणमुक्क० पदेसविहत्तिएहि केवडियं खेत्तं
पोसिदं ? लोगस्स असंखे०भागो । अणुक० सव्वलोगो । सम्म०-सम्मामि० उक्क०
पदे० केव० ? लोगस्स असंखे०भागो । अणुक० लोग० असंखे०भागो अट्ठचोइस
भागा देसूणा सव्वलोगो वा ।

§ ७३. आदेसेण णेरइएसु अट्ठावीसं पयडीणमुक्क० लोग० असंखे०भागो ।
अणुक० लोग० असंखे०भागो छचोइस भागा देसूणा । एवं सत्तमाए । पढमाए पुढवीए
खेत्तभंगो । विदियादि जाव छट्ठि त्ति अट्ठावीस पयडीणमुक्क० खेत्तं । अणुक० लोग०
असंखे०भागो एक-वे-तिण्णि-चत्तारि-पंचचोइस भागा देसूणा ।

विदित होता है कि इनकी जघन्य और अजघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका क्षेत्र उत्कृष्ट और
अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंके समान बन जाता है, इसलिए उसे उनके समान जाननेकी
सूचना की है ।

§ ७२ स्पर्शन दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । निर्देश दो
प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे छ्वीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने
कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । इनकी
अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । सम्यक्त्व और
सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके
असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने लोकके
असंख्यातवें भाग, त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका
स्पर्शन किया है ।

विशेषार्थ—सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिके स्वामित्वको देखनेसे विदित होता
है कि उनका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागसे अधिक सम्भव नहीं है, इसलिए वह उक्त प्रमाण
कहा है । तथा छ्वीस प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति एकेन्द्रिय आदि जीवोंके भी सम्भव है,
इसलिए इनकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्शन सर्व लोकप्रमाण कहा है । तथा
सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके
असंख्यातवें भाग है, क्योंकि ये जीव पत्यके असंख्यातवें भागसे अधिक नहीं होते, इसलिए
इनका वर्तमान स्पर्शन उक्त क्षेत्रप्रमाण ही प्राप्त होता है । तथा देवोंके विहारवत्स्वस्थान आदिकी
अपेक्षा यह स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण और मारणान्तिक व
उपपादपदकी अपेक्षा सर्व लोकप्रमाण बन जानेसे उक्त प्रमाण कहा है ।

§ ७३ आदेशसे नारकियोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने
लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने
लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन
किया है । इसी प्रकार सातवीं पृथिवीमें जानना चाहिए । पहली पृथिवीमें क्षेत्रके समान भद्र है ।
दूसरीसे लेकर छठी पृथिवी तकके नारकियोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले
जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग,
त्रसनालीके कुछ कम एक, कुछ कम दो, कुछ कम तीन, कुछ कम चार और कुछ कम पाँच बटे

§ ७४ निरिबगदीए निरिबस्तमु अद्वावीसं पपदीगमुद्ध० लो० अस्तंसे०
 भागा । अमुद्ध० मन्त्रलागा । सम्म०-सम्माभि० उक्त० स्वेत्तं । अमुद्ध० साग०
 अर्मन्त्र०-भागा मन्त्रलागा वा । सम्मन्त्रमिदिपतिरिबस्तमु अद्वावीसं पपदीगं उद्ध०
 सागस्म अर्मन्त्र०-भागो । अमुद्ध० सागस्म अस्तंसे०-भागा सम्मन्त्रागो वा । एवं
 सम्मन्त्रमुस्मान् ।

§ ७५ दवगदीए दवस्तु अद्वावीसं पपदीगमुद्ध० स्वतर्मगो । अमुद्ध० साग०
 अर्मन्त्र०-भागा अद्वावीसपामभागा दवस्तु । एवं साहस्यीसागान् । मन्त्र०-साग०-
 भागि० अद्वावीस पपदागमुद्ध० अस्तं । अमुद्ध० साग० अस्तंसे०-भागा अद्वावीस-भागा

णवचोदस० देसूणा । सणक्कुमारादि जाव सहस्सारो ति अट्टावीसं पयडीणं उक्क० खेत्तं । अणुक्क० लोग० असंखे० भागो अट्टचो० देसूणा । आणदादि जाव अच्चुदो ति अट्टावीसं पयडीणमुक्क० खेत्तं । अणुक्क० लोग० असंखे० भागो छचोदस० देसूणा । उवरि खेत्तभंगो । एवं णेदच्चं जाव अणाहारए ति ।

§ ७६. जहण्णए पयदं । दुविहो णिहो सो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण छव्वीसं पयडीणं जह० लोग० असंखे० भागो । अज० सन्वल्लो गो । सम्म-सम्मापि० जह० अज० लोग० असंखे० भागो अट्ट-चोद० देसूणा सन्वल्लो गो वा ।

§ ७७. आदेसेण णेरइएसु अट्टावीसं पयडीणं ज० लोग० असंखे० भागो । अज० लोग० असंखे० भागो छचोदस० देसूणा । एवं सत्तमाए । पढमाए पुढवीए खेत्तभंगो । विदियादि जाव छट्ठि ति अट्टावीसं पयडीणं जह० खेत्तं । अज० लोग०

आठ और कुछ कम नौ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । सनकुमारसे लेकर सहस्सार कल्प तकके देवोंमें अट्टाईस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । आनत कल्पसे लेकर अच्युत कल्प-तकके देवोंमें अट्टाईस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । आगे क्षेत्रके समान भङ्ग है । इस प्रकार अनाहारक मार्गणातक ले जाना चाहिए ।

विशेषार्थ—यहाँ सर्वत्र अपने अपने वर्तमान आदि स्पर्शनको ध्यानमें रख कर सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्शन कहा है । शेष कथन सुगम है ।

§ ७६. जघन्यका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकार है—ओघ और आदेश । ओघसे छव्वीस प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग, त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है ।

विशेषार्थ—सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य प्रदेशविभक्ति एकेन्द्रियादि जीवोंके भी सम्भव है और देवोंके विहारवत्त्वस्थान आदिके समय भी हो सकती है । तथा इनका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है ही, इसलिए इनकी दोनों प्रकारकी प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण, त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण और सर्व लोकप्रमाण कहा है । शेष कथन सुगम है ।

§ ७७. आदेशसे नारकियोंमें अट्टाईस प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । इसी प्रकार सातवीं पृथिवीमें जानना चाहिए । पहली पृथिवीमें क्षेत्रके समान भङ्ग

असंख० मागो एक-ने विणिण-वचारि-पंचचारस मागा वा दसूणा ।

‡ ७८. विरिक्खगईए विरिक्खसु इत्थीसं पयदीणं जह० खंत्तं । अत्र० सम्म
लोगो । सम्म०-सम्मापि० जह० अत्र० लोग० असंख० मागा सम्मलोगो वा । सम्म-
पंचिदियविरिक्ख-सम्मपुत्तसु इत्थीसं पयदीणं जह० माग असंख० मागो । अत्र०
लोगसस असंखज्जदिमागो सम्ममागा वा । सम्म०-सम्मापि० जह०-अत्र० लोग०
असंख० मागो सम्ममागो वा ।

‡ ७९. दवगदीए दवसु इत्थीसं पयदीणं जह० लोग० असंख० मागो । अत्र०
लोग० असंख० मागा अह-जवचोरस दसूणा । सम्म-सम्मापि० जह० अत्र० लोग०
असंख० मागा अह-जवचार दसूणा ।

‡ ८०. मवज -वाण -ओइसि० बावीसं पयदीणं जह० माग० असस०

इ । वृत्तीसे लेकर बड़ी तककी वृत्तिकोमें अट्ठारस मृत्तियोंकी अपन्य प्रदेशविम्विच्छासे बीबोने स्पर्शन केने समान इ । अत्रापन्य प्रदेशविम्विच्छासे बीबोने लोकके असंख्यातवें मग तथा कमसे वसनासीके कुछ कम एक, कुछ कम दो, कुछ कम तीन कुछ कम चार और कुछ कम पाँच वत् और मगप्रमाण केरक स्पर्शन किया है ।

विशेषार्थ—मृत्तियोंमें और उनके अचान्तर भेदोंमें छत्त और अनुत्त प्रदेश-
विम्विच्छा अपेक्षा वा स्पर्शन पटित करके बछा आय हैं छती मकर पर्वों में पटित कर सेन
चाहिए । आगे भी अपनी अपनी विशेषता जानकर स्पर्शन पटित कर लेना चाहिए ।

‡ ८८. तियेज्जगतिं तियेज्जोमं इत्थीस मृत्तियोंकी अपन्य प्रदेशविम्विच्छासे बीबोने
स्पर्शन केने समान इ । अत्रापन्य प्रदेशविम्विच्छासे बीबोने सब लोकप्रमाण केरक स्पर्शन
किया है । सम्मत्त्व और सम्मग्निध्यात्वकी अपन्य और अतपन्य प्रदेशविम्विच्छासे बीबोने
लोकके असंख्यातवें मग और सब लोकप्रमाण केरक स्पर्शन किया है । सब पञ्च भूत्र
तियेज्ज और सब मनुष्योंमें इत्थीस मृत्तियोंकी अपन्य प्रदेशविम्विच्छासे बीबोने लोकके
असंख्यातवें मगप्रमाण केरक स्पर्शन किया है । अत्रापन्य प्रदेशविम्विच्छासे बीबोने लोकके
असंख्यातवें मग और सब लोकप्रमाण केरक स्पर्शन किया है । सम्मत्त्व और सम्मग्निध्यात्व
की अपन्य प्रदेशविम्विच्छासे बीबोने लोकके असंख्यातवें मग और सब लोकप्रमाण केरक
स्पर्शन किया है ।

‡ ८९. देवगतिं इत्थीस मृत्तियोंकी अपन्य प्रदेशविम्विच्छासे बीबोने लोकके असंख्यातवें
मग और वसनासीके कुछ कम आठ और कुछ कम नौ बटे और मगप्रमाण केरक स्पर्शन
किया है । सम्मत्त्व और सम्मग्निध्यात्वकी अपन्य प्रदेशविम्विच्छासे बीबोने लोकके असंख्यातवें
मग और वसनासीके कुछ कम आठ तथा कुछ कम नौ बटे और मगप्रमाण केरक स्पर्शन
किया है ।

विशेषार्थ—यहाँ सामान्य देवोंमें अनन्ताशुभकी अनुत्तकी अपन्य प्रदेशविम्विच्छा
हीने आयुधसे देवोंमें होती है और इनके स्पर्शन लोकके असंख्यातवें मगप्रमाण है, इसलिये
उनकी अपेक्षा स्पर्शन बढ प्रमाण क्या है । शेष कथन सुगम है ।

‡ ९०. मवजपासी, व्यन्तर और ओवेतिपी देवोंमें बाईस मृत्तियोंकी अपन्य प्रदेशविम्विच्छा

भागो । अज० लोग० असंखे०भागो अद्धुद्द-अद्द-णवचो० देसूणा । सम्म-सम्मामि० जह०-अज० लोग० असंखे०भागो अद्धुद्द-अद्द-णवचोदस० देसूणा । णवरि जोदिसि० सम्म०-सम्मामि० जह० लोग० असंखे०भागो अद्धुद्द वा अद्दचोद० देसूणा । अणंताणु०४ जह० लोग० असंखे०भागो अद्धुद्द-अद्दचोद० देसूणा । अज० लोग० असंखे०भागो अद्धुद्द-अद्द-णवचो० देसूणा ।

§ ८१. सोहम्मीसाण० देवोवं । णवरि अणंताणु०चउक्क० जह० लोगस्स असंखे०भागो अद्दचोद० देसूणा ।

§ ८२. सणक्कुमारादि जाव सहस्सारो ति वावीसं पयडीण जह० खेतं । अज० लोग० असंखे०भागो अद्दचो० देसूणा । सम्म०-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क०

वाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अजघन्य प्रदेशविभक्ति-वाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग तथा त्रसनालीके कुछ कम साढ़े तीन, कुछ कम आठ और कुछ कम नौ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण तथा त्रसनाली-के कुछ कम साढ़े तीन, कुछ कम आठ और कुछ कम नौ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । इतनी विशेषता है कि ज्योतिषी देवोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य प्रदेश-विभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण तथा त्रसनालीके कुछ कम साढ़े तीन और कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण तथा त्रसनालीके कुछ कम साढ़े तीन और कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण तथा त्रसनालीके कुछ कम साढ़े तीन, कुछ कम आठ और कुछ कम नौ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है ।

विशेषार्थ—उक्त देवोंमें एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य प्रदेशविभक्ति नहीं होती, इसलिए इनमें उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्ति-वाले जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम नौ बटे चौदह भागप्रमाण नहीं कहा है । शेष कथन सुगम है ।

§ ८१. सौधर्म और ऐशान कल्पके देवोंमें सामान्य देवोंके समान भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है ।

विशेषार्थ—सौधमद्विकमें विहारवत्स्वस्थान आदिके समय भी अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य प्रदेशविभक्ति वन जाती है, इसलिए इनमें उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण भी कहा है । शेष कथन स्पष्ट ही है ।

§ ८२. सनत्कुमारसे लेकर सहस्तर कल्प तकके देवोंमें बार्हस प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेश-विभक्तिवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य और अजघन्य प्रदेशविभक्ति-

नह०-असं० लोग० असंख्ये० मागो भद्रचोद० देखूना । मागदादि जाव अच्युतो वि
बावीस पयवीस नह० लोग० असंख्ये० मागो । मज० लोग० असंख्ये० मागो बचार०
देखूना । सम्म०-सम्मायि०-अर्णत्ताबु० चरक० नह०-असं० लोग० असंख्ये० मागो ब-
चोद देखूना । चरि खेचमगो । एवं जेद्वं जाव अणाहारि पि ।

⊗ सम्मकम्माय पायाजीवहि काखो कायम्भो ।

१८३ सुमयैवं सुत्तं । संपहि एवेण सुत्तेण सुविदस्वस्स चचारणं वतस्सामो ।
तं नहा—काखो दुविहो, नहण्णमो चकस्समो वेदि । चकस्से पयव । दुविहो
विहेसो—ओपेण आदेसेण य । ओपेण मिच्छत्त-वारसक०-महणो० चक०
पदेसपि० नह० एयसयमो, चक० आबधि० असंख्ये० मागो । अणुह सम्मदा ।
सम्म०-सम्मायि०-चहुसंज०-पुरिसवेद० चक० पदे० नह० एगस०, चक० संसेजा
सयया । अणुह० सम्मदा ।

वाले जीवने लोकके असंख्यातवै मागप्रमाण और ब्रह्मालोके कुछ कम आठ बटे चोद माग-
प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किआ है । आनतसे लेकर अच्युत कस्य तकके देखोमें बाईस महतिवैकी
अणुह प्रदेशविमिच्छासे जीवने लोकके असंख्यातवै मागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किआ है ।
अणुह प्रदेशविमिच्छासे जीवने लोकके असंख्यातवै मागप्रमाण और ब्रह्मालोके
कुछ कम बड़ बटे चोद मागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किआ है । सम्मकत्व सम्ममिच्छात्व और
अनन्तामुक्तवीचतुष्पदी अणुह और अणुह प्रदेशविमिच्छासे जीवने लोकके असं-
ख्यातवै मागप्रमाण और ब्रह्मालोके कुछ कम बड़ बटे चोद मागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किआ
है । इनसे ऊपरके देखोमें क्षेत्रके समान बड़ है । इस प्रकार अनन्ताहारक मार्गका एक ल
जाग्य चाहिए ।

इस प्रकार स्पर्श समाप्त हुआ ।

⊗ सब कर्मोंका नाना बीबोंकी अपेक्षा काट करना चाहिए ।

१८४ यह सूत्र सुगम है । अब इस सूत्रसे सूचित हुए अर्थकी लक्ष्यारण्य बतलाते हैं ।
एक अर्थ हो प्रकारका है—अणुह और चक० । चक०का प्रकार है । मिहोरा हो प्रकारका
है—आप और आदेरा । ओपसे मिच्छात्व बाह्य कपाव और आठ नीकपयोंकी चक०
प्रदेशविमिच्छा अणुह काट एक समय है और चक० अणुह आबधितके असंख्यातवै मागप्रमाण
है । अणुह प्रदेशविमिच्छा अणुह सबैदा है । सम्मकत्व सम्ममिच्छात्व चार संजतन और
पुरुषवैकी चक० प्रदेशविमिच्छा अणुह काट एक समय है और चक० काट संख्यात समय
है । अणुह प्रदेशविमिच्छा काट सबैदा है ।

विशेषार्थ— सब महतिवैकी चक० प्रदेशविमिच्छा एक समय तक हो और द्वितीय
समयमें न हो चक० सम्मक है, इसलिये सबकी चक० प्रदेशविमिच्छा अणुह काट एक समय
काट है । तथा मिच्छात्व आदिकी चक० प्रदेशविमिच्छा नाना जीवोंकी अपेक्षा लगातार
अनन्ताहारक समय तक हो सकती है, इसलिये इनकी चक० प्रदेशविमिच्छा चक० काट आबधित
असंख्यातवै मागप्रमाण काट है और ओप एत महतिवैकी चक० प्रदेशविमिच्छा माना जीवोंकी

§ ८४. आदेसेण णेरइएसु सत्तावीसं पयडीणमुक्कं पदे० जह० एगस०, उक्क० आवलि० असंखे० भागो । अणुक्क० सव्वद्धा । सम्मत्त० ओषं । एवं पढमाए । विदियादि जाव सत्तमि ति अट्ठावीसं पयडीणमुक्कं पदे० जह० एगस०, उक्क० आवलि० असंखे० भागो । अणुक्क० सव्वद्धा ।

§ ८५. तिरिक्खगदीए तिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्ताणं पढमपुढविभंगो । पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीणं विदियपुढविभंगो । एवं पंचिंदिय-तिरिक्खअपज्जत्ताणं ।

§ ८६. मणुस्सगदीए मणुस्स० मिच्छत्त-वारसक्क०-वण्णोक० उक्क० पदे० जह० एगस०, उक्क० आवलि० असंखे० भागो । अणुक्क० सव्वद्धा । सम्म०-सम्मापि०-चदुसंजल० तिण्हं वेदाणमुक्क० जह० एगस०, उक्क० संखेज्जा समया । अणुक्क० सव्वद्धा । मणुसपज्ज०-मणुसिणीसु अट्ठावीसं पयडीणमुक्क० पदे० जह० एगस०, उक्क०

अपेक्षा निरन्तर संख्यात समय तक हो सकती है, इसलिए इनकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा है। नाना जीवोंकी अपेक्षा ऐसा समय नहीं प्राप्त होता जब किसी प्रकृतिकी सत्ता न हो, इसलिए सबकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका काल सर्वदा कहा है।

§ ८४ आदेशसे नारकियोंमें सत्ताईस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका काल सर्वदा है। सम्यक्त्व प्रकृतिका भङ्ग ओषके समान है। इसी प्रकार पहली पृथिवीमें जानना चाहिए। दूसरीसे लेकर सातवीं तक प्रत्येक पृथिवीमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेश-विभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका काल सर्वदा है।

विशेषार्थ—सामान्यसे नारकियोंमें और पहली पृथिवीमें कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव उत्पन्न होते हैं, इसलिए इनमें सम्यक्त्व प्रकृतिका भङ्ग ओषके समान बन जाता है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

§ ८५. तिर्यञ्चगतिमें तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्त जीवोंमें पहिली पृथिवीके समान भङ्ग है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनी जीवोंमें दूसरी पृथिवीके समान भङ्ग है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए।

विशेषार्थ—प्रारम्भके तीन प्रकारके तिर्यञ्चोंमें कृतकृत्य वेदकसम्यग्दृष्टि जीव उत्पन्न होते हैं, इसलिए इनमें पहली पृथिवीके समान भङ्ग बन जानेसे उसके समान जाननेकी सूचना की है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

§ ८६. मनुष्यगतिमें मनुष्योंमें मिथ्यात्व, वारह कषाय और छह नोकषायोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका काल सर्वदा है। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, चार संज्वलन और तीन वेदोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिका काल सर्वदा है। मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनिर्योमें अट्ठाईस

संसे० सुपया । अशुद्ध० सम्बद्धा । एवमाजहादि नाव सम्बद्धसिद्धि सि ।

§ ८७ मनुसम्पन्न० इन्वीसं पयडीजसुद्ध० पदे नह० एमस०, उह०
भाबसि० मसंसे० भामो । अशुद्ध० नह० सुवापव समुद्रनं, उह० पम्बि०
मसंसे० भामो । सम्म०-सम्मापि० एवं येव । नवरि अशुद्ध० नह० एमस० ।

§ ८८ देवमदीए देवानं पदमशुद्धविपमो । एवं सोहम्मादि नाव सहससारो सि ।
मवज०-नाज०-बोइसि० विदियपुहविपमो । एवं जेदम्ब नाव अजाहारि सि ।

प्रकृतियोंकी बहुत प्रवेशविमर्शिक बचन्य कास एक समय है और बहुत कास संख्यात समब है । अनुक्त्य प्रवेशविमर्शिक कास सर्वेश है । इसी प्रकार आनत कल्पसे लेकर सर्वावैसिद्धि तक के देवोंमें जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—सामान्य मनुष्योंमें जिस प्रकार जोबमें पठित करके बतला आये हैं उस प्रकार पठित कर सेवा चाहिए । मात्र जीवेर और नपुंसकनेइकी बहुत प्रवेशविमर्शिक बहुत कम इनमें अपने स्वामित्वके अनुसार संख्यात समय ही प्राप्त होता है इसलिए इन दोनों प्रकृतियोंकी परिगणना यहाँ सम्पन्न्य आदिके सब की है । मनुष्य पर्याप्त, मनुष्यनी और सर्वावैसिद्धिके देव तो संख्यात होते ही हैं । आनत्यविमें वे ही सम्पन्न होते हैं, इसलिए इनमें आहुतिस्त प्रकृतियोंकी बहुत प्रवेशविमर्शिक बहुत कास संख्यात समब बननेसे उत्तममात्र कहा है । शेष कम सुगम है ।

§ ८९ मनुष्य अपर्वातमें इन्वीस प्रकृतियोंकी बहुत प्रवेशविमर्शिक बचन्य कास एक समय है और बहुत कास भाबसिके असंख्यातमें मागप्रमात्र है । अनुक्त्य प्रवेशविमर्शिक बचन्य कास एक समय कम प्रुलक भवम्बुप्रमात्र है और बहुत कास पत्नके असंख्यातमें मागप्रमात्र है । सम्पन्न्य और सम्पत्तिमध्यात्मक मझ इसीप्रकार है । इतनी विशेषता है कि इनकी अनुक्त्य प्रवेशविमर्शिक बचन्य कास एक समय है ।

विशेषार्थ—मनुष्य अपर्वात वह साम्तर मार्गका है । यह सम्भव है कि इस मार्गमें माना जीव प्रुलक भव तक ही रहे । इसलिए इस कासमेंसे बहुत प्रवेशविमर्शिक एक समय कास कम देने पर अनुक्त्य प्रवेशविमर्शिक बचन्य कास एक समय कम प्रुलक भवम्बुप्रमात्र बन जानेसे यहाँ इन्वीस प्रकृतियोंकी अनुक्त्य प्रवेशविमर्शिक बचन्य कास एक समय कम प्रुलक भवम्बुप्रमात्र कहा है । तथा इस मार्गका बहुत कास पत्नके असंख्यातमें मागप्रमात्र है, इसलिए यहाँ सब प्रकृतियोंकी अनुक्त्य प्रवेशविमर्शिक बहुत कास एक कास प्रमात्र कहा है । सम्पन्न्य और सम्पत्तिमध्यात्मक व बहूतना प्रकृतिवर्ग हैं इसलिए यहाँ इनकी अनुक्त्य प्रवेशविमर्शिक बचन्य कास एक समय बन जानेसे एक कास प्रमात्र कहा है । शेष कम सुगम है ।

§ ९० देवगतिमें देवोंमें पहली श्रुतिवर्गके समान मझ है । इसी प्रकार सोधर्मकल्पसे लेकर सहस्रार कल्पतकके देवोंमें जानना चाहिए । भवनवासी, ध्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें दूसरी श्रुतिवर्गके समान मझ है । इस प्रकार अनाहारक मार्गका तक ले जाना चाहिए ।

विशेषार्थ—सोधमार्गमें देवोंमें भी प्रथम श्रुतिवर्गके मारकियोंके समान हृत्पदेरक सम्पत्ति जीव कल्प होत हैं । इसलिए इनमें प्रथम श्रुतिवर्गके मारकियोंके समान मझ बन जानेसे उनके समान जाननेकी सूचना की है । तथा भवनवर्गमें हृत्पदेरकसम्पत्ति जीव मर कर

§ ८६. जहणणए पयदं । दुविहो णिहोसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण अट्ठावीसं पयडीणं जह० पदे० केव० ? जह० एगस०, उक्क० संखेज्जा समया । अज० सव्वद्धा । एवं सव्वणिरय-सव्वतिरिक्ख-सव्वमणुस्स-सव्वदेवा त्ति । णवरि मणुस्स-अपज्ज० अट्ठावीसं पयडीणं जह० पदे० एगस०, उक्क० संखेज्जा समया । अज० जह० खुदाभवग्गहणं समयुणं, सत्तणोकसायाणमंतोमुहुत्त, सम्म०-सम्माप्ति० एगस०; सव्वेसिमुक्क० पल्लिदो० असंखे० भागो । एवं णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति ।

❀ अंतरं । णाणाजीवेहि सव्वकम्माण जह० एगसमओ, उक्क० अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्ठा ।

§ ६०. एदेण सुत्तेण सूचिदजहणणुकस्संतराणमुच्चारणं वत्तइस्सामो । तं जहा—

नहीं उत्पन्न होते, इसलिए इनमे दूसरी पृथिवीके नारकियोंके समान भङ्ग वन जानेसे उनके समान जाननेकी सूचना की है । शेष कथन सुगम है ।

इस प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट काल समाप्त हुआ ।

§ ८६. जघन्यका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे अट्ठाईस प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिका काल सर्वदा है । इसी प्रकार सब नारकी, सब तिर्यञ्च, सब मनुष्य और सब देवोंमें जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि मनुष्य अपर्याप्तकोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय कम लुल्लक भव ग्रहणप्रमाण है, सात नोकषायोंका अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका एक समय है और सबका उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है । इस प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—अट्ठाईस प्रकृतियोंकी जघन्य प्रदेशविभक्ति क्षणका समय होती है । यह सम्भव है कि एक या अधिक जीव एक समय तक ही इनकी जघन्य प्रदेशविभक्ति करें और यह भी सम्भव है कि क्रमसे नाना जीव संख्यात समय तक इनकी जघन्य प्रदेशविभक्ति करते रहें, इसलिए ओघसे इनकी जघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा है । इनकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका काल सर्वदा है यह स्पष्ट ही है । अपने अपने स्वामित्वको देखते हुए सब नारकी आदि मार्गणाओंमें यह काल घटित हो जाता है, इसलिए उनमें ओघके समान जाननेकी सूचना की है । मात्र मनुष्यअपर्याप्तकोंमें विशेषता है । बात यह है कि वह सान्तर मार्गणा है, इसलिए उसमें सब प्रकृतियोंकी अजघन्य प्रदेशविभक्तिका जघन्य काल अलग अलग प्राप्त होता है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है । विशेष विचार स्वामित्वको देखकर कर लेना चाहिए । शेष कथन सुगम है ।

इसप्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा काल समाप्त हुआ ।

❀ अन्तर । नाना जीवोंकी अपेक्षा सब कर्मोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है ।

§ ६०. इस सूत्रसे सूचित हुए जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरको उच्चारणके अनुसार वतलाते

अंतरं द्विहो—अहण्यमुक्तं च । उक्तं पयदं । द्विहो निहोसो—ओपेन आदेसेन य । ओपेन अदावीसं पयहीणमुक्तं पदे० नह० एगसगमो, वक्त० अजतकाष्ठ मसंस्तथा पागलपरिपहा । मपुक्त० गति अंतरं । एवं सम्बन्धेनैव-सम्बन्धितरत्न सम्बन्धस्त-सम्बन्धेन ति । अन्तरि मपुस्तमपञ्च० अदावीसं पयहीणमुक्त० नह० एगस०, वक्त० पस्त्रिहो० अस्तं० भागो । एवं गेदम्बं जात्र अणाहारि ति ।

१६१ नहण्यप पयदं । द्विहो निहोसो—ओपेन आदेसेन य । ओपेन अदा वक्तसंतरं पकविद् तथा नहण्यनहण्यंतरपरूपणा परूपदम्भा ।

१६२ सण्णियासो द्विहो—नहण्यमो वक्तस्तमो चेदि । वक्तस्तप पयदं । द्विहो निहोसा—ओपेन आदेसेन य । ओपेन मिथ्यातस्त वक्तस्तपदेसविहविनो

है । वक्त—अन्तर हो प्रकरका है—अपम्य और वक्त । वक्तका प्रकरका है । निहोसा हो प्रकरका है—ओप और आदेसा । ओपसे अदावीसं मृत्तियोंकी वक्त प्रदेराविम्विक्ता अत्रम्य अन्तर एक समय है और वक्त अन्तर अन्तर का है जो अस्तक्यात पुद्गल परिवर्तनके कारण है । अनुवृत्त प्रदेराविम्विक्ता अन्तरका नहीं है । इसी प्रकार सब मार्गी, सब तिवैद्य, सब मनुष्य और सब देवोंमें जानना चाहिए । इतनी विरोधता है कि मनुष्य अपर्याप्त जीवोंमें अदावीस मृत्तियोंकी अनुवृत्त प्रदेराविम्विक्ता अत्रम्य अन्तर एक समय है और वक्त अन्तर पत्पके अस्तक्यातमें भगवत्मात्र है । इस प्रकार अनाहारक मार्गका तब से जाना चाहिए ।

विशेषार्थ वक्त प्रदेराविम्विक्ता गुणितकर्मार्थक जीवोंके होती है । यह सम्भव है कि गुणितकर्मार्थकविभिसे अन्तर एक या जाना और एक समयके अन्तरसे अदावीस मृत्तियोंकी अलग पतग वक्त प्रदेराविम्विक्ता करें और अन्तर अन्तरके अन्तरसे करें, इसलिये यहाँ ओपसे और गति मार्गकाके सब भर्तोंमें अदावीस मृत्तियोंकी वक्त प्रदेराविम्विक्ता अत्रम्य अन्तर एक समय और वक्त अन्तर अन्तर का है । यहाँ सबकी अनुवृत्त प्रदेराविम्विक्ता अन्तरका नहीं है वह स्पष्ट ही है । मात्र मनुष्यअपर्याप्त यह साधक मार्गका है, इसलिये हममें अपने अन्तरका अनुवृत्त अदावीस मृत्तियोंकी अनुवृत्त प्रदेराविम्विक्ता अत्रम्य अन्तर एक समय और वक्त अन्तर पत्पके अस्तक्यातमें भगवत्मात्र है । शेष कथन स्पष्ट ही है ।

१६१ अपम्यका प्रकरका है । निहोसा हा प्रकरका है—ओप और आदेसा । ओपसे अत्रम्य अन्तर वक्त पत्पके अत्रम्यसे अन्तरका है जो प्रकर अपम्य और अत्रम्य प्रदेरा-विम्विक्ता अन्तरका प्रकृपा करने चाहिए ।

विशेषार्थ—अपम्य प्रदेराविम्विक्ता गुणितकर्मार्थक जीवोंके होती है, इसलिये सब मृत्तियोंकी अपम्य और अत्रम्य प्रदेराविम्विक्ता अन्तर का वक्त वक्त और अनुवृत्त प्रदेरा-विम्विक्ताके समान वक्त अत्रम्य वक्त समान अत्रम्यकी सृजना की है ।

इस प्रकार मात्र जीवोंकी अपेक्ष अन्तरका समान हुआ ।

१६२ सन्निहोसा प्रकरका है—अपम्य और वक्त । वक्तका प्रकरका है । निहोसा हा प्रकरका है—ओप और आदेसा । ओपसे मिथ्यातकी वक्त प्रदेराविम्विक्ता जीव

बारसकसाय-छण्णोकसायाणं णियमा विहत्तिओ । तं तु उक्कस्सादो अणुक्कस्सं वेढाण-
पदिदं अणंतभागहीणं असंखेज्जभागहीणं वा । इत्थि-णवुंसयवेदाणं णियमा अणुक्कस्स-
विहत्तिओ असंखेज्जभागहीणो । इत्थिवेददब्बेण संखेज्जगुणहीणेण होदब्बं, णेरइय-
इत्थिवेदबंधगद्धादो कुरवित्थिवेदबंधगद्धाए लद्धणवुंसयवेदबंधगद्धा संखेज्जभागवहु-
भागा । एवं संखेज्जगुणत्तादो कुरवेसु इत्थिवेदपूरणकालो एगगुणहाणीए असंखेज्जदि-
भागो त्ति कट्ठु णासंखे०भागहीणत्तं जुत्तं, तत्थ असंखेज्जाणं गुणहाणीणमुवलंभादो ।
णोवलंभो असिद्धो, 'रदीए उक्कस्सदब्बादो इत्थिवेदुक्कस्सदब्बं संखेज्जगुण' इदि उवरि
भण्णमाणअप्पावहुअमुत्तेण तत्थ असंखेज्जाणं गुणहाणीणमुवलंभादो । णवुंसयवेद-
दब्बेण वि संखेज्जभागहीणेण होदब्बं, ईसाणदेवेसु णवुंसयवेदेण त्थावरबंधयद्धं सयलं
लद्धूण तसबंधगद्धाए पुणो संखेज्जखंडीकदाए लद्धवहुभागत्तादो । कुरवीसाणदेवेसु
इत्थि-णवुंसयवेदाणि आवूरिय णेरइएसुप्पज्जिय उक्कस्सीकयमिच्छत्तस्स असंखे०भाग-
हाणी होदि त्ति वोत्तु जुत्तं, तेत्तीस सागरोवमेसु गल्लिदासंखेज्जगुणहाणिदब्बस्स
णिरयगइसंचयं मोत्तूण कुरवीसाणदेवेसु संचिददब्बस्स अवढाणविरोहादो । तम्हा

वारह कषाय और छद्म नोकपायोंकी नियमसे विभक्तिवाला होता है । किन्तु वह इसकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाला भी होता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाला भी होता है । यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाला होता है तो उत्कृष्टकी अपेक्षा उसके अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति दो स्थान पतित होती है—या तो अनन्तभागहीन होती है या असंख्यातभाग हीन होती है । स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी नियमसे अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाला होता है जो नियमसे असंख्यातभागहीन प्रदेशविभक्तिवाला होता है ।

शंका — स्त्रीवेदका द्रव्य संख्यातगुणा हीन होना चाहिए, क्योंकि नारकियोंमें जो स्त्रीवेदका

बन्धक काल है उससे तथा देवकुरु और उत्तरकुरुमें जो स्त्रीवेदका बन्धककाल है उससे प्राप्त हुआ नपुंसकवेदका बन्धक काल संख्यात बहुभाग अधिक देखा जाता है । इसप्रकार संख्यातगुणा हीनसे देवकुरु उत्तरकुरुमें स्त्रीवेदका पूरणकाल एक गुणहानिके असंख्यातवें भागप्रमाण है ऐसा मानकर उसे असंख्यातवें भागहीन मानना उचित नहीं है, क्योंकि वहा असंख्यात गुणहानियाँ उपलब्ध होती है और उनका प्राप्त होना असम्भव भी नहीं है, क्योंकि रतिके उत्कृष्ट द्रव्यसे स्त्रीवेदका उत्कृष्ट द्रव्य संख्यातगुणा है इस प्रकार आगे कहे जानेवाले अल्पबहुत्य सूत्रके अनुसार वहाँ असंख्यात गुणहानियाँ उपलब्ध होती हैं । तथा नपुंसकवेदके द्रव्यको भी संख्यातवें भाग हीन नहीं होना चाहिए, क्योंकि ईशान कल्पके देवोंमें नपुंसकवेदके साथ समस्त स्थावर बन्धक कालको प्राप्त करके पुनः त्रसबन्धक कालके संख्यात खण्ड करने पर बहुभाग प्राप्त होता है । यदि कहा जाय कि उत्तरकुरु-देवकुरु और ऐशान कल्पके देवोंमें स्त्रीवेद और नपुंसकवेदको पूरकर तथा नारकियोंमें उत्पन्न होकर मिथ्यात्वके द्रव्यको उत्कृष्ट करनेवाले जीवके स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी असंख्यात भागहानि होती है सो ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि तेतीस सागरप्रमाण कालके भीतर असंख्यात गुणहानिप्रमाण द्रव्यके गल जाने पर नरकगतिस्मन्धी सञ्चयको छोड़कर कुरु और ऐशान कल्पके देवोंमें संचित हुए द्रव्यका अवस्थान माननेमें विरोध आता है, इसलिये असंख्यातभागहीनपना नहीं बनता है ?

असंख्येयमागहीनत्वं न पश्येत्ति ? न, कुर्यात्सायनवेदे च वस्तीकयश्चिन्मनुष्यसपवेद
 दम्भं गेरुपसुप्यस्त्रिय च वस्तीकयितोसुचकृष्टिय च वस्तीकयमिच्छत्यस्त इति-मनुष्यसपवेद
 दम्भानमसंख्ये० भागहानि पठि विरोहाभावादो । एममुच्यहानीय असंख्ये० भाममेतच्छब्देन
 तृतीयसंसारोपमेयं द्विदम्भमुचकृष्टिय सयस्यदम्भस्त असंख्ये० भागमेतं चेव तत्र परेदि
 ति ह्यदो नम्यदे ? एदम्भदो नव सञ्जिनासादो । किं प दृष्टिश्चकम्भसिप 'अवशिष्टीर्ण
 द्विदीर्ण भित्तयेस्त च वस्तीसपदं द्विद्विदीर्ण द्विदीर्ण भित्तयेस्त अहण्यपदं' ति येयनामुच्यदो
 प नम्यदे अहा असंख्ये० भामो चेव ममदि ति । पशुसंज्ञजन पुरिसवेद० श्रियमा
 मशुच संख्येयदृष्टाहीना । सम्मत्तसम्भामिच्छाचारं श्रियमा अविद्विष्यो, दृष्टिद
 कम्भसियवादो । एवं चारसकसाय-अनोक्तसायार्ण ।

समाधान—यही क्योंकि कुर्यात्सायी बीबमें और पेशान कम्भके देवमें उत्कृष्ट किये गये
 स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके दृष्ट्यको मायिकर्ममें उत्पन्न होकर उत्कृष्ट संकलेशा द्वाय उत्कर्षित करके
 जिसने मिथ्यात्वके दृष्ट्यको उत्कृष्ट किया है उसके स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका दृष्ट्य असंख्यात
 यागहीन होय है इसमें कोई शिरोध नहीं आता ।

संका—एक गुणव्यक्तिके असंख्यातवें भागप्रमाण कालके द्वाय तृतीय स्तर कालके
 भीतर स्थित दृष्ट्यका उत्कर्ष करके समस्त दृष्ट्यके असंख्यातवें भागप्रमाण दृष्ट्यको ही यों
 पाएय करता है यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—इसी सन्निकर्षसे जाना जाता है । दूसरे गुणितकर्मार्थिक बीबमें उपरित्त
 स्थितियोंके निष्कम्भ उत्कृष्ट पद होता है और अचरित्त स्थितियोंके निष्कम्भ अपत्य पद होय
 है पेश का चरित्तत्वं कहा है उसके जाना जाय है कि असंख्यातवों भग ही गताय है ।

चार संवत्सन और पुरुषवेदकी नियमसे अनुत्कृष्ट प्रदेराविमर्षिताला होता है जो
 अनुत्कृष्ट प्रदेराविमर्षि संख्यातगुणी हीन होती है । सम्भवतः और सम्भामिध्यात्वकी नियमसे
 अविमर्षिताला होय है, क्योंकि मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेराविमर्षिताला बीब गुणितकर्मार्थिक
 है । इसी प्रकार बाह्य कथाय और अह लोकयायोंकी मुख्यतसे सन्निकर्षे आगमा चाहिए ।

विशेषार्थ—मिथ्यात्व बाह्य कथाय और अह लोकयायोंकी उत्कृष्ट प्रदेराविमर्षिताला स्थानी
 एक समान है, इसलिये मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेराविमर्षिताले बीबक भग्न प्रकृतियोंके साथ
 जिस प्रकारका सन्निकर्ष कहा है उसी प्रकार बाह्य कथाय और अह लोकयायोंकी उत्कृष्ट
 प्रदेराविमर्षिताले जीके भग्न प्रकृतियोंके साथ सन्निकर्षे बन जाता है यह एक कथमत्र वास्तव्य
 है । यही इतना विशेष आगम चाहिए कि बाह्य कथायोंकी उत्कृष्ट कर्मस्थिति वालीस कोशकोही
 सागरप्रमाण है और अह लोकयायोंकी उत्कृष्ट कर्मस्थिति संकल्पसे प्राप्त होती है जो वालीस
 कोशकोही सागरसे एक आवाज कम है, अतः मिथ्यात्वकी गुणितकर्मार्थविधि करते हुए जिस
 जीके तीस कोशकोही सागर स्थित हो गये हैं उसके आगे इन कर्मों की गुणितकर्मार्थविधि
 करनी चाहिए । इस प्रकार करानेसे मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेराविमर्षिके समब इन कर्मों की भी
 उत्कृष्ट प्रदेराविमर्षि प्राप्त हो जाती है । अथवा मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेराविमर्षिके समय इन
 कर्मों की अनुत्कृष्ट प्रदेराविमर्षि प्यती है । इसी प्रकार इन कर्मों की उत्कृष्ट प्रदेराविमर्षिके
 समय मिथ्यात्वकी भी अनुत्कृष्ट प्रदेराविमर्षि पठित कर लेनी चाहिए । यह इन

§ ६३. सम्मामि० उक्क० पदेसविहत्तिओ मिच्छत्त-सम्मात्ताणं णियमा अणुक्क० असंखे०गुणहीणा । अट्ठक०-अट्ठणोक० णियमा अणुक्क० असंखे०भागहीणा । चट्ठ-संज०-पुरिस० णियमा अणुक्क० संखेज्जगुणहीणा । सम्मतमेवं चेव । णवरि मिच्छत्तं णत्थि । सम्मामि० णियमा अणुक्क० असंखे०गुणहीणा ।

§ ६४. इत्थिवेद० उक्क० विहत्तिओ मिच्छत्त-वारसक०--सत्तणोक० णियमा अणुक्क० असंखे०भागहीणा । चट्ठसंज०-पुरिस० णियमा अणुक्क० संखेज्ज०गुणहीणा ।

उन्नीस प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिकी अपेक्षा परस्पर सन्निकर्षका विचार हुआ । अब रहे शेष कर्म सो इन कर्मोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिके समय तीन वेद और चार संज्वलन कषायोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति नहीं होती, अतः उस समय इन सात कर्मोंकी अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति कही है । जो गुणितकर्मांशिक जीव मिथ्यात्व आदि उन्नीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति कर रहा है उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका सत्त्व नहीं होता यह स्पष्ट ही है । शेष कथन परामर्श करके समझ लेना चाहिए ।

§ ६३ सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्व और सम्यक्त्वकी नियमसे अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातगुणी हीन होती है । आठ कषाय और आठ नोकषायोंकी नियमसे अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातभाग हीन होती है । चार संज्वलन और पुरुषवेदकी नियमसे अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है जो नियमसे संख्यात-गुणी हीन होती है । सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवके इसी प्रकार सन्निकर्ष करना चाहिए । इतनी विशेषता है कि इसके मिथ्यात्वका सत्त्व नहीं होता । तथा इसके सम्यग्मिथ्यात्वकी नियमसे अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातगुणी हीन होती है ।

विशेषार्थ—जो गुणितकर्मांशिक जीव क्षायिक सम्यक्त्वको प्राप्त करता है उसके मिथ्यात्वके अन्तिम स्थितिकाण्डककी अन्तिम फालिके द्रव्यका सम्यग्मिथ्यात्वमें संक्रमण होने पर सम्यग्मिथ्यात्वका और सम्यग्मिथ्यात्वकी अन्तिम स्थितिकाण्डककी अन्तिम फालिके द्रव्यका सम्यक्त्वमें संक्रमण होने पर सम्यक्त्वका उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म होता है । इस प्रकार जिस समय सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म होता है उस समय मिथ्यात्व और सम्यक्त्व दोनोंका सत्त्व रहता है किन्तु वह अपने उत्कृष्टकी अपेक्षा असंख्यातगुणा हीन अनुत्कृष्टरूप ही रहता है, क्योंकि उस समय तक मिथ्यात्वके द्रव्यमेंसे तो असंख्यात बहुभागप्रमाण द्रव्यका सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वमें संक्रमण हो लेता है । तथा सम्यक्त्वमें अभी सम्यग्मिथ्यात्वके असंख्यात बहुभागप्रमाण द्रव्यका संक्रमण नहीं हुआ है, इसलिए सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मके समय मिथ्यात्व और सम्यक्त्वका द्रव्य अपने उत्कृष्टकी अपेक्षा असंख्यातगुणा हीन कहा है । इसी प्रकार सम्यक्त्वके उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मके समय सम्यग्मिथ्यात्वका द्रव्य अपने उत्कृष्टकी अपेक्षा असंख्यातगुणा हीन घटित कर लेना चाहिए । इसके मिथ्यात्वका सत्त्व नहीं रहता यह स्पष्ट ही है । शेष कथन सुगम है ।

§ ६४ स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति करनेवाले जीवके मिथ्यात्व, बारह कषाय और सात नोकषायोंकी नियमसे अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातभाग हीन होती है ।

§ ६६. आदेसेण णेरइएमु मिच्छ० उक्क० पदेसविहत्तिओ सोलसक०-छण्णोक० णियमा विहत्तिओ । तं तु वेदाणपदिदा अणंतभागहीणा असंखे०भागहीणा वा । तिहं वेदाणं णियमा अणुक० असंखे०भागहीणा । सम्मत्त०-सम्माभिच्छत्ताण-मविहत्तिओ । एवं सोलसक०-छण्णोकसायाणं । सम्म० उक्क० पदेसविहत्तिओ वारसक०-णवणोक० णियमा अणुक० असंखेज्जभागहीणा । सम्मामि० उक्क० पदे०विहत्ति० सम्म० णियमा अणुक० असंखेज्जगुणहीणा । मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक० णियमा अणुक० असंखे०भागहीणा । इत्थिवेद० उक्क० पदे०वि० मिच्छ०-सोलसक०-अट्ठणोक० णियमा अणुक० असंखे०भागहीणा । एवं णवुंसयवेदस्स । पुरिसवेदस्स एवं चेव । णवरि सम्म०-सम्मामि० असंखे०गुणहीणा, उक्कड्डणाए विणा देवेसु होती है जो असंख्यातगुणी हीन होती है ।

विशेषार्थ—यहाँ पुरुषवेदकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिके समय छह नोकषाय और चार संज्वलनका, क्रोध संज्वलनकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिके समय पुरुषवेद और मान आदि तीन संज्वलन का, मान संज्वलनकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिके समय शेष तीन संज्वलनोंका, मायासंज्वलनकी उत्कृष्ट-प्रदेशविभक्तिके समय मान संज्वलन और लोभसंज्वलनका तथा लोभसंज्वलनकी उत्कृष्ट प्रदेश-विभक्तिके समय मायासंज्वलनका भी सत्त्व रहता है, इसलिए जहाँ जिन प्रकृतियोंका सन्निकर्ष सम्भव है वह कहा है । मात्र विवक्षितकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति जिन प्रकृतियोंके अन्तिम स्थितिकाण्डककी अन्तिम फालिका पतन होने पर होती है उन प्रकृतियोंकी प्रदेशविभक्ति असंख्यात-गुणी हीन पाई जाती है और जिन प्रकृतियोंके स्थितिकाण्डकोंका घात होना शेष रहता है उनकी प्रदेशविभक्ति संख्यातगुणी हीन पाई जाती है ।

§ ६६. आदेशसे नारकियोंमें मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाला जीव सोलह कषाय और छह नोकषायोंकी नियमसे विभक्तिवाला होता है । किन्तु वह इनकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति-वाला भी होता है और अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाला भी होता है । यदि अनुत्कृष्ट प्रदेश-विभक्तिवाला होता है तो उसके इनकी दो स्थान पतित अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है—या तो अनन्तभाग हीन अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है या असंख्यातभाग हीन अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है । तीन वेदोंकी नियमसे अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातभाग हीन होती है । यह सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके सत्त्व से रहित होता है । इसी प्रकार सोलह कषाय और छह नोकषायोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जाना चाहिये । सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवके बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी नियमसे अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातभाग हीन होती है । सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति-वाले जीवके सम्यक्त्वकी नियमसे अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातगुणी हीन होती है । मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी नियमसे अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातभागहीन होती है । स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्व, सोलह कषाय और आठ नोकषायोंकी नियमसे अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यात भाग हीन होती है । इसी प्रकार नपुंसकवेदकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए । पुरुषवेदकी मुख्यतासे सन्निकर्ष इसी प्रकार जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि इसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातगुणी हीन अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है, क्यों कि उत्कर्षणके बिना

गकिदासंलेख्यगुणहाणिनादो। शुभिद्रुक्म्यंसिपत्रकडिद्रुमिष्यचदम्मे महासकृन्नेन सम्पत्-
सम्पत्तिष्यत्तेषु संकटंते असंसे० मागाहीनं किण्ण आयदे ! न, सम्मादिदिमोक्कण्णव
पूचीकयहेदिमगोपुष्यासु असंसे० गुणहाणिमेतासु मस्तिदासु असंसे० गुणहाणिदंसनादो।
एवं पदमाए । विदियादि जाव सचमि ति एव वेव । जवरि सम्म० उक्क० पदे०
विहसिगो मिष्य०-सोलसक० जवणोक्क० भियमा अजुक्क० असंसे० मागाहीना ।
सम्पामि० गियमा उक्क० । एवं सम्पामि० ।

१५७ तिरिक्क०-पंषिदियतिरिक्क०-पंषि०तिरि०पक्क० देवादीए देव०
सोहम्मादि जाव जवरिमगेवखा ति गेरहपमंगो । पंषिदियतिरिक्क०नाभिनीसु विदिय-
जुहविमंगो । एवं भवण -पाण०-जोदिसियाण । पंषिदियतिरिक्क०मपक्क०चाण
पंषिदियतिरिक्क०पक्क०चमंगो । जवरि सम्म० उक्क० पदेसविहसि० सम्पामि० तं दु
वेहानपदिदं मर्जवमागाहीनं असंसे० मागाहीनं । सेसपदा गियमा अजुक्क० असंसे०-

देवोंमें असंख्यात गुणहाणियों गल जाती हैं ।

शृङ्खला—शुक्तिरुक्म्यंसिपत्र कीन्हे द्वारा मिष्यात्वके इत्येव चरकपैय करके और छे छे
रुपमें सम्पत्त्व और सम्पत्तिमिष्यात्वमें संक्रान्त कर देने पर इनका इत्थं असंख्यातमाग हीन क्यों
गयीं होय है ?

समाधान—गयीं, क्योंकि सम्पत्तिमिष्यके अपकपैयके द्वारा अबस्तन गोपुष्यामोंके स्वतः
हो जानेसे असंख्यात गुणहाणियोंके गल जाने पर असंख्यातगुणहामि देवी जाती है ।

इसी प्रकार पहली श्रुतिमें नामना चाहिये । दूसरीसे लेकर सातवीं श्रुति तकके
पार्थक्यमें भी इसी प्रकार नामना चाहिये । इसमें विशेषता है कि इनमें सम्पत्त्वकी उल्लेख
प्रदेशविषयिकामें भीमके मिष्यात्व सोलह कपाय और नौ मोकपायोंकी नियमसे अजुक्क
प्रदेशविषयिक होती है जो असंख्यातमाग हीन होती है । इसके सम्पत्तिमिष्यात्वकी नियम
से अजुक्क प्रदेशविषयिक होती है । इसी प्रकार सम्पत्तिमिष्यात्वकी मुख्यतासे सन्निहपै
नामना चाहिये ।

विशेषार्थ—छामान्यसे पार्थक्यमें और पहली श्रुतिमें वृत्तहृत्यवेदक सम्पत्तिमिष्य कीव
कल्पन होय है, इसलिये अन्य सम्पत्त्वकी उल्लेख प्रदेशविषयिकसे समग्र मिष्यात्व, सम्पत्तिमिष्यात्व
और अनन्तामुपगमोपायकाल सत्त्व गयीं होनेसे अन्य सन्निहपै गयीं कय । परन्तु द्वितीयादि
श्रुतिविषयोंमें वृत्तहृत्यवेदकसम्पत्तिमिष्य कीव गयीं कल्पन होते, इसलिये गयीं सम्पत्त्वकी उल्लेख प्रदेश-
विषयिकसे समग्र सत्त्व सत्त्व सर्वाकार किया है । लेख कमन स्पष्ट ही है ।

१५८ तिरिक्क०, पक्क मित्र तिरिक्क०, पक्क मित्र तिरिक्क० पयसि, वेवपत्तिमें छामान्य देव
और सोवमें कमसे लेकर जवरिम मदेवक तकके देवोंमें पार्थक्यमें समान भय है । पक्क मित्र-
तिरिक्क० वाजिचिचोंमें दूसरी श्रुतिमें समान भय है । इसी प्रकार जवववासी, व्यम्तर और
जवपत्ति देवोंमें जानना चाहिये । पक्क मित्र तिरिक्क० जवववासीमें पक्क मित्र तिरिक्क०
पयसिमें समान भय है । इसमें विशेषता है कि इनमें सम्पत्त्वकी उल्लेख प्रदेशविषयिकमें भी होती है और अजुक्क प्रदेशविषयिक भी
होती है । यदि अजुक्क प्रदेशविषयिक होती है तो वह जो स्वान वतित होती है—य तो अबन्तमाग

भागहीणा । एवं सम्मामि० । एवं मणुस्सअपज्ज० ।

§ ६८. मणुसतियम्मि ओघं । णवरि मणुस्सिणीसु पुरिसवेद० उक्क० पदेस-
विह० इत्थिवेद० णियमा अणुक० असंखे० गुणहीणा । अणुदिसादि जाव सव्वद्वसिद्धि
ति मिच्छ० उक्क० पदे० वि० सम्मामिच्छत्त-सोलसक०-छण्णोक० णियमा तं तु
विट्ठाणपदिदा अणंतभागहीणा असंखे० भागहीणा वा । सम्मत्त० णियमा अणुक०
असंखे० भागहीणं । तिण्हं वेदाणं णियमा अणुक० असंखे० भागहीणा । एवं
सोलसक०-छण्णोक०-सम्मामिच्छत्ताणं । सम्मत्त० उक्क० पदे० विहत्ति० वारसक०-
णवणोक० णियमा अणुक० असंखे० भागहीणा । इत्थिवेद० उक्क० पदे० वि० मिच्छ०-
सम्मामि०-सोलसक०-अट्ठणोक० णियमा अणुक० असंखे० भागहीणा । सम्म०

हीन होती है या असंख्यातभाग हीन होती है । शेष प्रकृतियोंकी नियमसे अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातभाग हीन होती है । इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए । मनुष्य अपर्याप्तकोंमें इसी प्रकार अर्थात् पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान सन्निकर्ष जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—जो विशेषता सामान्य नारकियोंमें वतला आये हैं वही यहाँ तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्त, सामान्य देव और सौधर्म कल्पसे लेकर उपरिम अवैयक तकके देवोंमें घटित हो जाती है, इस लिए इनमें सामान्य नारकियोंके समान जाननेकी सूचना की है । दूसरी पृथिवीके समान पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनी और भवनत्रिकमें कृतकृत्यवेदक सम्यग्मिथ्यात्व जीव नहीं उत्पन्न होते, इसलिए इनमें दूसरी पृथिवीके समान भङ्ग वन जानेसे उसके समान जाननेकी सूचना की है । पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तक यह मार्गणा ऐसी है जिसमें मात्र मिथ्यादृष्टि जीव होते हैं इसलिए इसमें अन्य प्ररूपणा तो पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्तकोंके समान वन जाने से उनके जाननेकी सूचना की है । किन्तु इसके सिवा जो विशेषता है उसका अलगसे निर्देश किया है । मनुष्य अपर्याप्तकोंमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान भङ्ग है यह स्पष्ट ही है ।

§ ६८. मनुष्यत्रिकमें ओषके समान भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि मनुष्यनियोंमें पुरुष-वेदकी उत्कृष्ट प्रदेशविभवाले जीवके स्त्रीवेदकी नियमसे अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातगुणी हीन होती है । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवके सम्यग्मिथ्यात्व, सोलह कषाय और छह नोकषायोंकी नियमसे उत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति भी होती है और अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति भी होती है । यदि अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है तो वह दो स्थान पतित होती है—या तो अनन्तभाग हीन होती है या असंख्यातभागहीन होती है । सम्यक्त्वकी नियमसे अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातगुण हीन होती है । तीन वेदोंकी नियमसे अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यतभागहीन होती है । इसी प्रकार सोलह कषाय, छह नोकषाय और सम्यग्मिथ्यात्वकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए । सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवके बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी नियमसे अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातभाग हीन होती है । स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट प्रदेशविभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सोलह कषाय और आठ नोकषायोंकी नियमसे अनुत्कृष्ट प्रदेशविभक्ति

गियमा मनुष्य० अस्तंस्ते० गुणहीन । एवं चरुत० । पुरिसवेदस्त देवायं । एवं जेव्वं
बाब अणाहारि चि ।

१६६ सहण्णए पयदं । बुद्धिहो मि०—आपण आदसेण य । ओपण
मिच्छतस्स सहण्णपदसविहित्तमो सम्म०-सम्मापि० एकारसक०-तिणिगदं० गियमा
अग्रहण्ण० अस्तंस्तेअगुणम्भदिया । सोमसंज०-अग्गाक० गियमा अग्रह० अस्तंस्तेअमाम
म्भदिया । सम्मत्तगुणेण पंषिदिपसु बद्धावडिसागरोबमाणि हिंढेण संपिद्विबहुगुण-
हाणिमेत्तपंषिदिपसमपबद्धाणं सगसगजहण्णज्ज्वादो अस्तंस्तेअगुणत्तं पात्तुण
णासंखेअमागम्भदियत्तं, एरंदिपकस्सजागादो वि पंषिदिपजहण्णज्जोत्तम अस्तंस्ते-
गुणत्तुत्तंमादा । एत्थ परिहारो बुबदे—जदि वि बद्धावडिसागरोबमेसु सोमसंजत्तं
चिरत्तं बंभवो वि समजहण्णज्ज्वादो वित्तेसादियं चव, अप्पदरकासम्मि भीअज्ज्वादो

होती है जो अस्तंस्तेअगुणहीन होती है । सम्मत्तकी नियमसे अगुणत्त प्रवेशविमर्श होती है जो
अस्तंस्तेअगुणी हीन होती है । इसीप्रकार ननुसकवेदकी मुख्यतासे स्मिन्कर्ष जानना चाहिए ।
पुरुषत्वकी मुख्यतासे स्मिन्कर्ष सामान्य वेबोंके समान है । इस प्रकार अनाहारक मार्गशा तक
जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—ओपसे जो स्मिन्कर्ष कहा है वह मनुष्यवर्गमें अधिकतम पठित हो जाता
है, इसलिए हममें ओपके समान जाननेकी सूचना की है । मात्र मनुष्यवर्गमें पुरुषत्वकी
मुख्यतासे स्मिन्कर्षमें कुछ फिरोला है, इसलिए इसका अलगसे निर्देश किया है । अनुसिरा
आदिमें सब वेब सम्मत्त होत हैं, इसलिए हममें अन्य वेबोंसे विशेषता होनेके कारण हममें
सब प्रवृत्तियोंकी मुख्यतासे स्मिन्कर्ष अलगसे निर्देश किया है । विशेष स्पष्टीकरण स्वामित्वको
वेबद्वय कर लेता चाहिए । आगे अनाहारक मार्गशा तक इसी प्रकार अपनी अपनी विशेषताको
जानकर स्मिन्कर्ष पठित कर लेना चाहिए ।

इस प्रकार अगुण स्मिन्कर्ष समाप्त हुआ ।

१६६ अण्णमय प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओप और आदेरा । आपसे
मिष्मत्तकी लक्ष्य प्रवेशविमर्शतासे जीवके सम्मत्त सम्मत्तिष्मत्त म्याय कपाय और
तीन वेबकी नियमसे अण्णमय प्रवेशविमर्श होती है जो अस्तंस्तेअगुणी अधिक होती है । सोम-
संजत्त और अण्णमय प्रवेशविमर्श होती है जो अस्तंस्तेअगुणी अधिक होती है ।

अंका—सम्मत्त गुणके साथ जो पञ्चेन्द्रियोंमें हो अण्णमय सागर अस्त तक परिभ्रमण
करता है उसके स्मिन्कर्ष रूप केद गुणवर्गप्रमाण पञ्चेन्द्रियलक्ष्यकी समग्रप्रवृत्ति अपने
अपने लक्ष्य प्रवृत्ति अपने अस्तंस्तेअगुणी होते हैं अस्तंस्तेअगुणी अग अधिक नहीं, क्योंकि
पञ्चेन्द्रिय जीवके अण्णमय योगसे भी पञ्चेन्द्रिय जीवका लक्ष्य अग अस्तंस्तेअगुणी पाया
जाता है ।

समाधान—यहाँ तक अंका समाधान करते हैं—जो अण्णमय सागर अस्तके भीतर
सोमसंजत्तमय निरन्तर लक्ष्य करता हुआ भी अपने लक्ष्य प्रवृत्तिसे वह विशेष अधिक ही होता

भुजगारकालम्मि संचिददव्वस्स असंखे० भागव्वभहियत्तादो । केसि पि सगजहण्ण-
दव्वादो संखे० भागव्वभहियं संखे० गुणमसंखेज्जगुण वा किण्ण जायदे ? ण, असंखेज्ज-
भागव्वभहियं चेव, उक्कस्सजोगेण वेद्धावद्विसागरोवमाणि परिभमिदसम्मादिद्विम्मि वि
अप्परकालादो भुजगारकालस्स णियमेण विसेसाहियस्सेवुवलंभादो । एदं कुदो उव-
लव्वभदे । ‘णियमा असंखे० भागव्वभहिया’ त्ति उच्चारणाइरियवयणादो । कम्मपदेसाणं
भुजगारप्पदरभावो किंणिवंधणो ? ण, सुक्कंधारपवखचंदमंडलभुजगारप्पदराणं व
साहावियत्तादो । जदि अप्पदरकालम्मि भ्मीणमाणदव्वादो भुजगारकालम्मि संचिद-
दव्वं विसेसाहियं चेव होदि तो खविदकम्मसियदव्वादो गुणिदकम्मसियदव्वेण वि
विसेसाहिणेव होदव्वं ? ण च एवं, वेदणाए चुण्णिमुत्तेण च सह विरोहादो
त्ति सच्चं विसेसाहियं चेव, कि तु ण विरोहो, सवयणविरोहं
मोत्तूण तंतंतरत्थेण विरोहाणव्वुवगमादो । वेयणा-चुण्णिमुत्ताणमुवएसो

है, क्योंकि अल्पतर कालके भीतर ज्ञयको प्राप्त होनेवाले द्रव्यसे भुजगार कालके भीतर सब्बित
हुआ द्रव्य असंख्यातवें भाग अधिक होता है ।

शंका—किन्हीं जीवोंके अपने जघन्य द्रव्यसे सख्यातवें भाग अधिक, सख्यातगुणा अधिक
या असख्यातगुणा अधिक क्यों नहीं होता है ?

समाधान—नहीं क्योंकि असंख्यातवें भाग अधिक ही होता है, क्योंकि उत्कृष्ट योगके साथ
दो झ्यासठ सागर काल तक परिभ्रमण करनेवाले सम्यग्दृष्टि जीवके भी अल्पतर कालसे भुजगार
काल नियमसे अधिक ही उपलब्ध होता है ।

शंका—यह किस प्रमाणसे उपलब्ध होता है ?

समाधान—उच्चारणाचार्यके ‘नियमसे असंख्यातवें भाग अधिक है’ इस वचनसे उप-
लब्ध होता है ।

शंका—कर्म प्रदेशोंका भुजगार और अल्पतर पद किस निमित्तसे होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि जिस प्रकार शुक्ल और कृष्णपक्षमें चन्द्रमण्डल स्वभावतः
वृद्धता और घटता है उसी प्रकार यहाँ पर कर्मप्रदेशोंका भुजगार और अल्पतर पद स्वभावसे
होता है ।

शंका—यदि अल्पतर कालके भीतर नष्ट होनेवाले द्रव्यसे भुजगार कालके भीतर सञ्चित
होनेवाला द्रव्य विशेष अधिक ही होता है तो क्षणिककर्मांशिकके द्रव्यसे गुणितकर्मांशिक जीवका
द्रव्य भी विशेष अधिक होना चाहिए । परन्तु ऐसा नहीं है, क्यों कि ऐसा मानने पर वेदना और
चूर्णिसूत्रके साथ विरोध आता है ?

समाधान—विशेष अधिक है यह सत्य है तो भी वेदना और चूर्णिसूत्रके साथ विरोध नहीं
आता, क्योंकि स्ववचन विरोधको छोड़ कर दूसरे ग्रन्थमें प्रतिपादित अर्थके साथ आनेवाले
विरोधको नहीं स्वीकार किया गया है ।

वेदना और चूर्णिसूत्रोंका उपदेश है कि अल्पतर कालके भीतर ज्ञयको प्राप्त होनेवाले द्रव्यसे

मागम् । सैसाणं पयदीणं भियमा अविहितिमो । एवं सत्तकसायाणं । सोमसंजं ।
 नहं । पदसविहितिमो मोण-मायासंमं । गियमा अमं । असंस्लेः गुणम् । सोमसंजं ।
 गियमा अमं । असंस्लेः भागम् । सैसाणं पयदीणं गियमा अविहितिमो । माणसंजं ।
 अण्णपदेसविहितिमो मायासंमं । गियमा अमं । असंस्लेः गुणम् । सोमसंमं ।
 गियमा अमं । असंस्लेः भागम् । मायासंमं । नहं । पदेसविहितिमो सोमसंजं ।
 गियमा अमं । असंस्लेः गुणम् । सैसाणं पयदीणं गियमा अविहितिमो । सोमसंजं । नहं । पदे-
 सिहं । एकारसं-तिष्णिबंदं । गियमा अमं । असंस्लेः गुणम् । अण्णोक्कं गियमा
 अमं । असंस्लेः भागम् ।

१ १०२. इतिवेदं । नहं । पदे विहितिमो तिष्णिंसंमं पुरिसं । निवमा
 अमं । असंस्लेः गुणम् । सोमसंमं । अण्णोक्कं । गियमा अमं । असंस्लेः भागम् ।
 एवं अणुसपवेदस्स । पुरिसवेदं । नहं । पदसं । तिष्णिंसंमं । गियमा अमं । असंस्लेः
 गुणम् । सोमसंमं । गियमा अमं । असंस्लेः भागम् । इस्सं । नहं । पदे-
 विहितिमो तिष्णिंसंमं । पुरिसवेदं । गियमा अमं । असंस्लेः गुणम् । सोमसंमं ।

अभिर्मत्तिवाला होता है । इसी प्रकार सात कण्ठयोक्की मुख्यवासे सन्निकर्षे कामना चाहिए ।
 सोमसंमंमकी अपन्य प्रदेराभिर्मत्तिवाले जीवके मानसंमंमन और मायासंमंमनकी नियमसे
 अन्नपन्य प्रदेराभिर्मत्ति होती है जो असंस्पातगुणी अधिक होती है । सामसंमंमनकी नियमसे
 अन्नपन्य प्रदेराभिर्मत्ति होती है जो असंस्पातवें माग अधिक होती है । नहं रोप प्रहृष्टियोंका
 नियमसे अभिर्मत्तिवाला होता है । मानसंमंमनकी अपन्य प्रदेराभिर्मत्तिवाले जीवके माया-
 संमंमनकी नियमसे अन्नपन्य प्रदेराभिर्मत्ति होती है जो असंस्पातगुणी अधिक होती है ।
 सोमसंमंमनकी नियमसे अन्नपन्य प्रदेराभिर्मत्ति होती है जो असंस्पातवें माग अधिक होती है ।
 मायासंमंमनकी अपन्य प्रदेराभिर्मत्तिवाले जीवके सोमसंमंमनकी नियमसे अन्नपन्य प्रदेरा-
 बिर्मत्ति होती है जो असंस्पातगुणी अधिक होती है । नहं रोप प्रहृष्टियोंका अभिर्मत्तिवाला
 होता है । सोमसंमंमनकी अपन्य प्रदेराभिर्मत्तिवाले जीवके म्पाद कपाप और तीन
 वेदोंकी नियमसे अन्नपन्य प्रदेराभिर्मत्ति होती है जो असंस्पातगुणी अधिक होती है ।
 नहं नोक्कपावोंकी नियमसे अन्नपन्य प्रदेराभिर्मत्ति होती है जो असंस्पातवें माग अधिक
 होती है ।

१ १२. बीवेदकी अपन्य प्रदेराभिर्मत्तिवाले जीवके तीन संमंमन और पुरुषवेदकी नियमसे
 अन्नपन्य प्रदेराभिर्मत्ति होती है जो असंस्पातगुणी अधिक होती है । सोम संमंमन और
 मागपावोंकी नियमसे अन्नपन्य प्रदेराभिर्मत्ति होती है जो असंस्पातवें माग अधिक होती है ।
 इसी प्रकार अणुसपवेदकी मुख्यवासे सन्निकर्षे कामना चाहिए । पुरुषवेदकी अपन्य प्रदेरा-
 बिर्मत्तिवाले जीवके तीन संमंमनोंकी नियमसे अन्नपन्य प्रदेराभिर्मत्ति होती है जो असंस्पात-
 गुणी अधिक होती है । सोमसंमंमनकी नियमसे अन्नपन्य प्रदेराभिर्मत्ति होती है जो
 असंस्पातवें माग अधिक होती है । इस्सकी अपन्य प्रदेराभिर्मत्तिवाले जीवके तीन संमंमन
 और पुरुषवेदकी नियमसे अन्नपन्य प्रदेराभिर्मत्ति होती है जो असंस्पातगुणी अधिक होती है ।

णियमा अजह० असंखे०भागवभ० । पंचणोक० णियमा तं तु वेद्धानपदिदा अणंत-
भागवभ० असंखे०भागवभहि० । एवं पंचणोकसायाणं ।

§ १०३. आदेसेण णेरइएसु, मिच्छ० जह० पदेसविहृत्तिओ सम्म०सम्मापि०
णियमा अज० असंखे०गुणवभहिया । वारसक०णवणोक० णियमा अज० असंखे०-
भागवभहिया । इत्थि-णवुंसयवेदाणं होदु णाम असंखे०भागवभहियत्त, मिच्छत्तं गंतूण
पडिवक्खवंधगद्धाए चरिमसमयम्मि जहणसंतकम्मत्तुवलंभादो । ण सेसकम्माणं,
तेत्तीससागरोवमेसु पंचिदियजोगेण एइदियजोगं पेक्खिदूण असंखे०गुणेण संचिदत्तादो
त्ति ? ण एस दोसो, खविदकम्मंसियजहणणदव्वं पेक्खिदूण गुणिदकम्मंसियभुजगार-
कालम्मि सचिददव्वस्स असंखे०गुणहीणत्तादो । एदं कुदो णव्वदे ? एदम्हादो चेव
सण्णियासादो । एवं संते जहणणदव्वादो उक्कस्सदव्वमसखे०गुणं ति भणिदवेयणा
सुण्णिमुत्तेहि विरोहो होदि त्ति ण पच्चवट्ठेयं, भिण्णोवएसत्तादो । सम्म० जह०

लोभसज्जलनकी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातवें भाग अधिक होती है । पाँच नोकपायोंकी नियमसे जघन्य प्रदेशविभक्ति होती है या अजघन्य प्रदेश-विभक्ति होती है । यदि अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है तो वह दो स्थान पतित होती है—या तो अनन्तवें भाग अधिक होती है या असंख्यातवें भाग अधिक होती है । इसी प्रकार पाँच नोकपायोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए ।

§ १०३ आदेशसे नारकियोंमें मिथ्यात्वकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातगुणी अधिक होती है । वारह कपाय और नौ नोकपायोंकी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातवें भाग अधिक होती है ।

शंका—स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी अजघन्य प्रदेशविभक्ति असंख्यातवें भाग अधिक होओ, क्योंकि मिथ्यात्वमें जाकर प्रतिपत्त प्रकृतिके बन्धक कालके अन्तिम समयमें, जघन्य सत्कर्म उपलब्ध होता है । परन्तु शेष कर्मोंकी अजघन्य प्रदेशविभक्ति असंख्यातवें भाग अधिक नहीं हो सकती, क्योंकि तेत्तीस सागरकी आयुवाले जीवोंमें एकेन्द्रिय जीवके योगको देखते हुए असंख्यातगुणे पञ्चेन्द्रिय जीवके योगद्वारा उनका द्रव्य सञ्चित होता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि क्षपितकर्मांशिक जीवके जघन्य द्रव्यको देखते हुए गुणितकर्मांशिक जीवके भुजगार कालके भीतर सञ्चित हुआ द्रव्य असंख्यातगुणा हीन होता है ।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ।

समाधान—इसी सन्निकर्षसे जाना जाता है ।

शंका—ऐसा होने पर जघन्य द्रव्यसे उत्कृष्ट द्रव्य असंख्यातगुणा होता है ऐसा कथन करनेवाले वेदना चूर्णिसूत्रोंके साथ विरोध आता है ?

समाधान—ऐसा निश्चय नहीं करना चाहिए, क्योंकि वह भिन्न उपदेश है ।

अप्यदरकाशमि मिश्रमागद्व्यादो भुजगारकाशमि शुण्ठिकम्मसितविसयमि
 संधिस्त्रमागद्व्यं कत्य वि असंसेखमागद्व्यमि, कत्य वि संसेखमागद्व्यमि, कत्य
 वि संसेखगुणमि, कत्य वि असंसेखगुणमि । तेन तस्य शुण्ठिकम्मसितविसकाशो
 कम्मद्विदिमेतो । संधिदकम्मसितयमि पुन भुजगारकाशमि संधिद्व्यादो अप्यदर
 काशमि मीनद्व्यमसंसे०मागद्व्यमि, कत्य वि संसेखमागद्व्यमि संसेखगुण
 ममि, कत्य वि संसेखगुणममि य । एवं इदो गम्यदे ? कम्मद्विदिमेतत्संधिदकम्मसितविसकाश-
 पदुपायणादो । चचारणाए पुन शुण्ठिकम्मसितयमि अप्यदरकाशमि मीनद्व्यादो
 भुजगारकाशमि संधिद्व्यं विसेसादिं येव । एवं इदो गम्यदे ? अमसंतगम्यस
 नहण्णद्व्यादो वेदावद्विद्वत्तरे पंधिदियमोगेण संधिदं वि अमसंतगम्यद्व्यं
 विसेसादिं येने ति वयणादो । यदि एवं तो चचारणाए कम्मद्विदिमेतो
 शुण्ठिकम्मसितविसकाशो किमह पक्खिदो ? भुजगारकाशमि समसंसेखदिमाग-
 पेत्तद्व्यसंतगणह ।

§ १० सम्पापिच्छत्तस नहण्णपदेसविष्टिजो मिच्छ नण्णारसक०-विणिज-

शुण्ठिकम्मशिक्षके विषयस्य भुजगार काशके मीतर सञ्चित इत्था इत्थं क्खी पर असंख्यातवें भाग
 अधिक है, क्खी पर संख्यातवें भाग अधिक है, क्खी पर संख्यातगुणा अधिक है और क्खी पर
 असंख्यातगुण अधिक है । इस लिए वहाँ शुण्ठिकम्मशिक्षक कम कमीस्वितिप्रमाण है । परन्तु
 कपितकम्मशिक्षके भुजगार काशके मीतर सञ्चित हुए इत्थसे अस्पतर काशके मीतर वयको मात
 होनेवाला इत्थं क्खी पर असंख्यातवें भाग अधिक है, क्खी पर संख्यातवें भाग अधिक है, क्खी पर
 संख्यातगुणा अधिक है और क्खी पर असंख्यातगुणा अधिक है ।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—कपितकम्मशिक्षक काश कमीस्वितिप्रमाण कहा है । उससे जाना जाता है ।

परन्तु चचारणाके अनुसार शुण्ठिकम्मशिक्षकसम्बन्धी अस्पतरकाशके मीतर वयको मात हुए
 इत्थसे भुजगारकाशके मीतर सञ्चित इत्था इत्थं विसेप अधिक ही है ।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—सोमसंज्ञकनके वयन इत्थसे दो वयासठ सगर काशके मीतर पञ्चत्रिंश
 जीवके बाग हाथ सञ्चित इत्था मी सोमसंज्ञकन इत्थं विसेप अधिक ही है इस वयनसे जाना
 जाता है ।

शंका—यदि ऐसा है तो चचारणामें शुण्ठिकम्मशिक्षक काश कमीस्वितिप्रमाण किस्विति
 क्या है ?

समाधान—भुजगार काशके मीतर अपना असंख्यातवें भाग अधिक इत्थका संज्ञक करनेके
 लिए क्या है ।

§ १ कम्मविध्यात्त्वधी अयम्य पदेसविष्टिजो जीवके मिच्छात्त, पन्हु कपय और

वेद० णियमा अज० असंखे० गुणवभहिया । लोभसंज०-छण्णोक० णियमा अज० असंखे० भागवभहिया । सम्मत्त० णियमा अविहत्तिओ । सम्मत्तस्स जहणपदेस-विहत्तिओ मिच्छ०-सम्मामि०-पण्णारसक०-तिण्णिवेदाणं णियमा अज० असंखे०-गुणवभहिया । लोभसंज०-छण्णोक० णियमा अज० असंखे० भागवभहि० । कारणं पुच्चं परूविदं ति नेह परूविज्जदे ।

१०१. अणंताणु०कोध० जहणपदे० माण-माया-लोभाणं णियमा त तु विहाणपदिदा अणंतभागवभहि० असंखे० भागवभहिया वा । मिच्छ०-सम्म०-सम्मामि०-एकारसक०-तिण्णिवेदाणं णियमा अज० असंखे० भागवभहिया । लोभ-संज०-छण्णोक० णियमा अज० असंखे० भागवभहिया । एव' माण-माया-लोभाणं । अपच्चक्खाणकोध० जह० पदेसविहत्तिओ सत्तकसायाणं णियमा विहत्तिओ । तं तु वेहाणपदिदा अणंतभागवभहिया असंखे० भागवभहिया । तिण्णिसंजल०-तिण्णिवेद० णियमा अज० असंखे० गुणवभहि० । लोभसंज०-छण्णोक० णियमा अज० असंखे०-

तीन वेदोंकी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातगुणी अधिक होती है । लोभसंज्वलन और छह नोकपायोंकी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातवें भाग अधिक होती है । तथा वह सम्यक्त्वका नियमसे अविभक्तिवाला होता है । सम्यक्त्वकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, पन्द्रह कपाय और तीन वेदोंकी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातगुणी अधिक होती है । लोभसंज्वलन और छह नोकपायोंकी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातवें भाग अधिक होती है । कारण पहले कह आये हैं, इसलिए यहाँ उसका कथन नहीं करते ।

१०१. अनन्तानुवन्धी क्रोधकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवके मान, माया और लोभकी नियमसे जघन्य प्रदेशविभक्ति होती है और अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है । यदि अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है तो वह दो स्थान पतित होती है—या तो अनन्तवें भाग अधिक होती है या असंख्यातवें भाग अधिक होती है । मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, ग्यारह कपाय और तीन वेदोंकी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातवें भाग अधिक होती है । लोभसंज्वलन और छह नोकपायोंकी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातवें भाग अधिक होती है । इसी प्रकार मान, माया और लोभकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए । अप्रत्याख्यानावरण क्रोधकी जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले जीवके सात कपायोंकी नियमसे जघन्य प्रदेशविभक्ति या अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है । यदि अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है तो वह दो स्थान पतित होती है—या तो अनन्तवें भाग अधिक होती है या असंख्यातवें भाग अधिक होती है । तीन संज्वलन और तीन वेदोंकी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातगुणी अधिक होती है । लोभसंज्वलन और छह नोकपायोंकी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातवें भाग अधिक होती है । वह शेष प्रकृतियोंका नियमसे

१ आ० प्रती 'असंखे० भागवभहिया वा । एव' इति पाठः । २ आ० प्रती 'छयणोक० अज०' इति पाठः ।

मागम्य० । सैसाज पयहीर्भं नियमा अविहितो । एवं सत्तकसायाणं । कोपसंभ०
 गृह० पदसंविहितो योज-मायासंभ० नियमा अत्र० असंसे० गुणम्भ० । सोमसंभ०
 नियमा अत्र० असंसे० भागम्भ० । सैसाज पयहीर्भं नियमा अविहितो । मागसंभ०
 गृहणपदसंविहितो मायासंभ० नियमा अत्र० असंसे० गुणम्भ० । सोमसंभ०
 नियमा अत्र० असंसे० भागम्भ० । मायासंभ० गृह० पदसंविहितो सोमसंभ०
 नियमा अत्र० असंसे० गुणम्भ० । सैसाजपदसंविहितो । सोमसंभ० गृह पदे०
 विह० एकारसं० विष्णिवेद० । नियमा अत्र० असंसे० गुणम्भ० । दण्णोक० नियमा
 अत्र असंसे० भागम्भ० ।

१०२ इतिपदे० गृह० पदे० विहितो विष्णिंसंभ० पुरिस० नियमा
 अत्र० असंसे० गुणम्भ० । सोमसंभ० दण्णोक० नियमा अत्र० असंसे० भागम्भ० ।
 एवं णवुसपदेदस । पुरिसवेद० गृह० पदसं० विष्णिंसंभ० नियमा अत्र असंसे०
 गुणम्भ० । सोमसंभ० नियमा अत्र० असंसे० भागम्भ० । इत्स० गृह० पदे०
 विहितो विष्णिंसंभ० पुरिसवेद० नियमा अत्र० असंसे० गुणम्भ० । सोमसंभ०

अविहितवाला होता है । इसी प्रकार सप्त कर्माध्यायों की मुख्यतासे सन्निधत्तै जानना चाहिए ।
 सोमसंभवनकी अपन्य प्रदेराविम्विवाले जीवके मानसंभवन और मायासंभवनकी नियमसे
 अत्रपन्य प्रदेराविम्विवाले होती है जो असंख्यातगुणी अधिक होती है । सामसंभवनकी नियमसे
 अत्रपन्य प्रदेराविम्विवाले होती है जो असंख्यातर्भे मग अधिक होती है । यह सोप प्रदृष्टियों
 नियमसे अविम्विवाला होता है । मानसंभवनकी अपन्य प्रदेराविम्विवाले जीवके माया
 संभवनकी नियमसे अत्रपन्य प्रदेराविम्विवाले होती है जो असंख्यातगुणी अधिक होती है ।
 सोमसंभवनकी नियमसे अत्रपन्य प्रदेराविम्विवाले होती है जो असंख्यातर्भे मग अधिक होती है ।
 मायासंभवनकी अपन्य प्रदेराविम्विवाले जीवके सोमसंभवनकी नियमसे अत्रपन्य प्रदेरा-
 विम्विवाले होती है जो असंख्यातगुणी अधिक होती है । यह सोप प्रदृष्टियों अविम्विवाला
 होता है । सोमसंभवनकी अपन्य प्रदेराविम्विवाले जीवके माया कर्मा और तीन
 वेदोंकी नियमसे अत्रपन्य प्रदेराविम्विवाले होती है जो असंख्यातगुणी अधिक होती है ।
 यह मोक्षार्थोंकी नियमसे अत्रपन्य प्रदेराविम्विवाले होती है जो असंख्यातर्भे मग अधिक
 होती है ।

१०२ अत्रकी अपन्य प्रदेराविम्विवाले जीवके तीन संभवन और पुरुषवेदकी नियमसे
 अत्रपन्य प्रदेराविम्विवाले होती है जो असंख्यातगुणी अधिक होती है । सोम संभवन और
 मायासंभवनकी नियमसे अत्रपन्य प्रदेराविम्विवाले होती है जो असंख्यातर्भे मग अधिक होती है ।
 इसी प्रकार ऋग्वेदकी मुख्यतासे सन्निधत्तै जानना चाहिए । पुरुषवेदकी अपन्य प्रदेरा-
 विम्विवाले जीवके तीन संभवनकी नियमसे अत्रपन्य प्रदेराविम्विवाले होती है जो असंख्यात-
 गुणी अधिक होती है । सामसंभवनकी नियमसे अत्रपन्य प्रदेराविम्विवाले होती है जो
 असंख्यातर्भे मग अधिक होती है । इत्सकी अपन्य प्रदेराविम्विवाले जीवके तीन संभवन
 और पुरुषवेदकी नियमसे अत्रपन्य प्रदेराविम्विवाले होती है जो असंख्यातगुणी अधिक होती है ।

णियमा अजह० असंखे० भागवभ० । पंचणोक० णियमा तं तु वेद्धानपदिदा अणंत-
भागवभ० असंखे० भागवभहि० । एवं पंचणोकसायाणं ।

§ १०३. आदेसेण णेरइएसु मिच्छ० जह० पदेसविहृतिओ सम्म० सम्मामि०
णियमा अज० असंखे० गुणवभहिया । वारसक० णवणोक० णियमा अज० असंखे०-
भागवभहिया । इत्थि-णवुंसयवेदाणं होदु णाम असंखे० भागवभहियत्त, मिच्छत्तं गंतूण
पडिवक्खबंधगद्धाए चरिमसमयम्मिं जहणसंतकम्पत्तुवलंभादो । ण सेसकम्माणं,
तेत्तीससागरोवमेसु पंचिदियजोगेण एइदियजोगं पेक्खिदूण असंखे० गुणेण संचिदत्तादो
त्ति ? ण एस दोसो, खविदकम्मंसियजहणदव्वं पेक्खिदूण गुणिदकम्मंसियभुजगार-
कालम्मि संचिददव्वस्स असंखे० गुणहीणत्तादो । एदं कुदो णव्वदे ? एदम्हादो चेव
सण्णियासादो । एवं संते जहणदव्वादो उक्कस्सदव्वमसंखे० गुणं ति भणिदवेयणा
चुण्णिमुत्तेहि विरोहो होदि त्ति ण पच्चवट्ठेयं, भिण्णोवएसत्तादो । सम्म० जह०

लोभसज्वलनकी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातवें भाग अधिक होती है । पाँच नोकषायोंकी नियमसे जघन्य प्रदेशविभक्ति होती है या अजघन्य प्रदेश-विभक्ति होती है । यदि अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है तो वह दो स्थान पतित होती है—या तो अनन्तवें भाग अधिक होती है या असंख्यातवें भाग अधिक होती है । इसी प्रकार पाँच नोकषायोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए ।

§ १०३. आदेशसे नारकियोंमें मिथ्यात्वकी, जघन्य प्रदेशविभक्तिवाले, जीवके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातगुणी अधिक होती है । वारह कषाय और नौ नोकषायोंकी नियमसे अजघन्य प्रदेशविभक्ति होती है जो असंख्यातवें भाग अधिक होती है ।

शंका—स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी अजघन्य प्रदेशविभक्ति असंख्यातवें भाग अधिक होओ, क्योंकि मिथ्यात्वमें जाकर प्रतिपक्ष प्रकृतिके बन्धक कालके अन्तिम समयमें, जघन्य सत्कर्म उपलब्ध होता है । परन्तु शेष कर्मों की अजघन्य प्रदेशविभक्ति असंख्यातवें भाग अधिक नहीं हो सकती, क्योंकि तेत्तीस सागरकी आयुवाले जीवोंमें एकेन्द्रिय जीवके योगको देखते हुए असंख्यातगुणे पञ्चेन्द्रिय जीवके योगद्वारा उनका द्रव्य सञ्चित होता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि क्षपितकर्माशिक जीवके जघन्य द्रव्यको देखते हुए गुणितकर्माशिक जीवके भुजगार कालके भीतर सञ्चित हुआ द्रव्य असंख्यातगुणा हीन होता है ।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ।

समाधान—इसी सन्निकर्षसे जाना जाता है ।

शंका—ऐसा होने पर जघन्य द्रव्यसे उत्कृष्ट द्रव्य असंख्यातगुणा होता है ऐसा कथन करनेवाले वेदना चूर्णिसूत्रोंके साथ विरोध आता है ?

समाधान—ऐसा निश्चय नहीं करना चाहिए, क्योंकि वह भिन्न उपदेश है ।

पदसिद्धिपदीमो मिच्छन्त-वारसक-अवजोह-। नियमा अज-। असंखे-भाकवहि-।
सम्मापि-। अर्णवापु-चरह-। नियमा अज-। असंखे-गुणम्-। सम्मापि-। अर-
पदसिद्धिपदीमो मिच्छन्त-वारसक-अवजोह-। नियमा अज-। असंखे-भाकवहि-।
अर्णवापु-चरह-। नियमा-। अज-। असंखे-गुणम्-।

१०४ अर्णवापु-काप-। अर-। पदसिद्धिपदीमो मिच्छन्त-वारसक-अवजोह-।
नियमा अज-। असंखे-भाकवहि-। सम्मापि-। नियमा अज-। असंखे-
गुणम्-। माण-माया-सोमार्ण-। नियमा तं तु विद्यापदिदा अर्णवामगम्-।
असंखे-भाकवहि-। वा । एवं माण-माया-सोमार्ण-। अपवत्साणकोप-। अर-
पदसिद्धिपदीमो मिच्छन्त-सत्तणाक-। नियमा अज-। असंखे-भाकवहि-। सम्मा-
सम्मापि-। अर्णवापु-चरह-। नियमा अज-। असंखे-गुणम्-। एकारसक-अप-
दुर्ग-। नियमा तं तु विद्यापदिदा-अर्णवामगम्-। असंखे-भाकवहि-। वा ।
एवकारसक-अप-दुर्ग-।

सम्पत्तकी अपत्य प्रदेशविम्विच्छित्ते जीवके मिच्छात्, बाह्य कथ्य और भी
लोकपायोकी नियमसे अत्राप्य प्रदेशविम्विच्छित्ते जीवके असंख्यातर्षे भाग अधिक होती है।
सम्पत्तमिच्छात् और अनन्तानुबन्धीकृत्युच्छिन्नी नियमसे अत्राप्य प्रदेशविम्विच्छित्ते जीवके
असंख्यातर्षी अधिक होती है। सम्पत्तमिच्छात्की अपत्य प्रदेशविम्विच्छित्ते जीवके
मिच्छात् बाह्य कथ्य और भी लोकपायोकी नियमसे अत्राप्य प्रदेशविम्विच्छित्ते जीवके
असंख्यातर्षे भाग अधिक होती है। अनन्तानुबन्धीकृत्युच्छिन्नी नियमसे अत्राप्य प्रदेश-
विम्विच्छित्ते जीवके असंख्यातर्षी अधिक होती है।

१०४ अन्तानुबन्धी कोमकी अपत्य प्रदेशविम्विच्छित्ते जीवके मिच्छात्, बाह्य कथ्य
और भी लोकपायोकी नियमसे अत्राप्य प्रदेशविम्विच्छित्ते जीवके असंख्यातर्षे भाग अधिक होती
है। सम्पत्त और सम्पत्तमिच्छात्की नियमसे अत्राप्य प्रदेशविम्विच्छित्ते जीवके असंख्यातर्षी
अधिक होती है। अनन्तानुबन्धी मान माया और सोमकी नियमसे अपत्य प्रदेशविम्विच्छित्ते भी
होती है और अत्राप्य प्रदेशविम्विच्छित्ते भी होती है। यदि अत्राप्य प्रदेशविम्विच्छित्ते होती है तो
यह वा न्याय पतिन होती है—या तो अनन्तर्षे भाग अधिक होती है या असंख्यातर्षे भाग
अधिक होती है। इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी मान माया और सोमकी मुख्यतासे स्मितक
आनना चाहिए। अपत्यकथ्यान्वयकापकी अपत्य प्रदेशविम्विच्छित्ते जीवके मिच्छात् और
साग लोकपायोकी नियमसे अत्राप्य प्रदेशविम्विच्छित्ते जीवके असंख्यातर्षे भाग अधिक होती
है। सम्पत्त सम्पत्तमिच्छात् और अनन्तानुबन्धीकृत्युच्छिन्नी नियमसे अत्राप्य प्रदेशविम्विच्छित्ते
होती है या असंख्यातर्षी अधिक होती है। बाह्य कथ्य, यय और कुमुदकी नियमसे अपत्य
प्रदेशविम्विच्छित्ते भी होती है और अत्राप्य प्रदेशविम्विच्छित्ते भी होती है। यदि अत्राप्य प्रदेशविम्विच्छित्ते
होती है तो यह वा न्याय पतिन होती है—या तो अनन्तर्षे भाग अधिक होती है या असंख्यातर्षे
भाग अधिक होती है। इसी प्रकार बाह्य कथ्य, यय और कुमुदकी मुख्यतासे स्मितक
आनना चाहिए।

